मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

जाहिलियत की सही पहचान ज़रूरी है

"मुसलमान को इस्लाम के ख़िलाफ़ करने और दुश्मनों का आलाकार बनने से ऐसी वहशत होनी चाहिए कि अगर ख़्वाब में भी कोई वाक़्या ऐसा देखे तो उसके मुंह से चीख़ निकल जाए और वह तौबा व इस्तिग़फ़ार करे, जाहिलियत से सिर्फ़ जज़्बाती नफ़रत ही काफ़ी नहीं, मुसलमानों के लिए जाहिलियत की सही पहचान ज़रूरी है, वह कभी उसके बारे में धोखा न खाए, अगर जाहिलियत ग़िलाफ़े काबा ओढ़कर और कुरआन मजीद हाथ में लेकर आए, जब भी वह लाहौल पढ़े और उससे पनाह मांगे, वह किसी भेष में उसके सामने आए तो वह उसको पहचान जाए।"

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली नदवी

December 2021

Rs.15/-

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी

दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

कामयाब शख़्स कौन?

"दो शख़्स हैं, एक शख़्स पुख़्ता हवेली में रहता है, ऐश व आराम से ज़िन्दगी बसर करता है, जलसों में तक़रीरें ज़ोर व शोर से करता है, हर "क़ौमी" तहरीक में आगे–आगे रहता है, बड़े–बड़े चन्दे देता है और दिलवाता है, अख़बारों में अच्छे–अच्छे मज़मून लिखता है, तक़रीर और तहरीर दोनों पर कुदरत रखता है, शहर के बड़े और इज़्ज़तदार लोगों में उसका शुमार होता है। दूसरा शख़्स है जो कच्चे मकान या झोपड़ी में रहता है, अपना काम अपने हाथ से करता है, रोज़े पाबन्दी से रखता है, नमाज़ बाजमाअत नाग़ा नहीं करता, पड़ोसियों और मुहल्ले वालों का सौदा वग़ैरह ख़ुद ला देता है, आमदनी बहुत थोड़ी रखता है, एक छोटी सी दुकान है, बाल–बच्चों के साथ मुश्किल से ही गुज़र कर पाता है, उसका शुमार बस्ती के अदना लोगों में है, दुनिया ने अपना फ़ैसला दोनों शख़्सों के बारे में कर दिया, आपको भी उस फ़ैसले से इत्तिफ़ाक़ है? आप भी सोचने–समझने के बाद यही राय रखते हैं?

पहला शख़्स "करता" कम है और "कहता" ज़्यादा है, दूसरा "कहता" कम है और "करता" ज़्यादा, पहले शख़्स की नज़र "इज़्ज़त" पर है और दूसरे की नज़र "ख़िदमत" पर, पहला नामवरी का भूखा है, दूसरा सवाबे आख़िरत का, पहले को तलाश उसकी है कि किन–किन अख़बारात में उसकी तारीफ़ छपी? दूसरे का फ़िक्र इसकी है कि दाहिनी तरफ़ के फ़रिश्ते ने नामा–ए–आमाल में नेकियां कितनी लिखीं? एक "अपने" को बढ़ा रहा है, दूसरा "अपने" को मिटा रहा है, एक ने अपनी ज़िन्दगी का सहारा उनको बना रखा है जो ख़ुद मिट जाने वाले हैं, दूसरे ने अपनी लौ उससे लगा रखी है जिसे कभी फ़ना नहीं, एक की मंज़िल–ए–मक़सूदा जाह व शोहरत है और दूसरे की गुमनामी व बेनिशानी, अल्लाह के दरबार में उन दोनों में ज़्यादा मक़बूल कौन हो सकता है? अपने दिल में ख़ुद सोचिए और फ़ैसला कीजिए कि अल्लाह के यहां मक़बूलियत पैदा करने वाली कौन सी चीज़ें हो सकती हैं, पुर तकल्लुफ़ लिबास? लज़ीज़ ग़िज़ाएं? उम्दा कोठियां? आला सामाने आराइश? नुमाइशी चन्दे? रस्मी जलसे? बनावटी तक़रीरें और तहरीरें? या उसके उल्टे ज़िन्दगी की सादगी, दिल की शिकस्तगी, ईसार व ख़िदमत गुज़ारी, इन्किसार व ख़ाकसारी, आजिज़ी व फ़रूतनी, सब्र व क़नाअत, जुहद व इबादत, तक़वा व तहारत?

आपसे पहला सवाल यह होगा कि आपने जाएज़ व हलाल ज़रियों से ख़ुद अपनी, अपनी बीवी–बच्चों की, अपने बूढे मां–बाप की, अपने कुन्बे के यतीमों की, अपने ख़ानदान के ज़ईफ़ों की, अपने पड़ोस के नादारों की किस हद तक ख़बरगीरी की? हां यह होगा कि आपने पब्लिक जलसों में सैंकड़ों हज़ारों के मजमे में अपने नाम के आगे एक बड़ा चन्दा लिखवाकर अपनी दरियादिली की किस हद तक नुमाइश की? आप पर सबसे मुक़द्दम ख़ुद अपने नफ़्स की इस्लाह और अपने से बराह रास्त और क़रीबी ताल्लुक़ रखने वालों की इस्लाह है या आप को कुदरत ने सारी क़ौम व मुल्क की इस्लाह ठेकेदार और ऑल इण्डिया लीडर पैदा? किया है।"

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रह०)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:१२ दिसम्बर २०२१ ई० वर्ष:१३

संरक्षक

हज़रत मौलाना
सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी
(अध्यक्ष - दारे अरफ़ात)

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी
अब्दुस्सुबहान नाख़ुदा नदवी
महमूद हसन हसनी नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ाँ नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

मुद्रक

मो० हसन नदवी

इस अंक में:

अपने जहां से बेख़बर.....2
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

रोशनी का मीनार.....3
हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी

आख़िरत की खेती.....5
हज़रत मौलाना सैय्यद राबे हसनी नदवी

सियासी हिकमते अमली की ज़रूरत.....7
मौलाना ख़ालिद सैफ़ुल्लाह रहमानी नदवी

सच्चाई क्या है?.....9
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तिलावत और उसके आदाब.....11
अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

जानवरों की ज़कात.....13
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अल्लाह की तरफ़ रुजूअ.....15
मोहम्मद तारिक़ बदायूंनी

इबरत की आंखों से देखिए.....17
मौलाना हिफ़्ज़ुर्रहमान साहब (रह०)

ज़ोहद व क़नाअत की आला मिसाल.....18
मुहम्मद अरमुग़ान नदवी

तहज़ीबे इस्लामी की आलमी तश्कील.....19
मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

प्रति अंक 15रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल–नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

सम्पादकीय

...... अपने जहां से बेख़बर

● बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मौजूदा दौर का एक बड़ा मर्ज़ यह है कि फ़र्ज़–ए–मन्सबी का एहसास ख़त्म होता जा रहा है, आम तौर पर लोग अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस नहीं कर पाते, उनकी निगाह दूसरों की कोताहियों पर रहती है, कोई हज़रत उमर (रज़ि0) की सिफ़ात पैदा करने को तैयार नहीं, सब बुढ़िया बनना चाहते हैं, जिसने बरसरे आम उमर को टोका था, इसका लाज़मी नतीजा यह है कि उम्मत आज सख़्त मुश्किलात से दो–चार है, चारों तरफ़ से मुसीबतों के पहाड़ हैं, तरह–तरह के मसले हैं, जिसका हल नज़र नहीं आता और अफ़सोस की बात यह है कि हल तलाश करने और उसको अमली तौर पर पेश करने के बजाए मज़ीद मुश्किलात पैदा करने की कोशिशें की जा रही हैं। ग़ैरों का क्या ''शिकवा'' अपने ही इस ''कारेख़ैर'' में लगे हुए हैं और सोशल मीडिया इसका सबसे बड़ा ज़रिया है।

यह सूरतेहाल मुसलमानों के लिए बड़ी तश्वीशनाक है और तारीख़ बताती है कि बुनियादी तौर पर मुसलमानों को हमेशा अपनों ही से नुक़सान पहुंचा है, मारास्तीन हमेशा रहे हैं जिन्होंने हुकूमतों के चिराग़ गुल किए हैं, तहरीकों को तितर–बितर किया है और किरदार कशी के ज़रिये से उम्मत को खोखला करने की कोशिशें की हैं, हमें माज़ी से सबक़ लेने की ज़रूरत है।

मशीन जब ही चलती है जब हर पुर्ज़ा सही काम करे, वरना सारा काम ठप हो जाता है, इस वक़्त इसकी ज़रूरत है कि उम्मत के मुख़्तलिफ़ तबक़ात अपनी–अपनी ज़िम्मेदारी की अदायगी में लग जाएं और जिससे जो बन पड़े वह करता चला जाए, बजाए इसके कि अपनी क़लम और ज़बान की ताक़त को किसी की किरदार कशी के लिए इस्तेमाल किया जाए और उम्मत को कमज़ोर किया जाए, खुदा की दी हुई नेमत का सही इस्तेमाल हो, दीन की सही तरजुमानी और मुख़्तलिफ़ क़ौमों के सामने उसकी मुकम्मल तस्वीर पेश करने की कोशिश उनकी नफ़्सियात को समझकर दावत की हिकमतों को सामने रखते हुए की जा रही है तो यक़ीनन इसके बेहतर नताएज सामने आ सकते हैं।

इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि मुनकर पर नकीर न की जाए, यह तो उम्मत पर फ़र्ज़े किफ़ाया है और उल्माए उम्मत की ज़िम्मेदारी है, लेकिन फ़र्क़ को समझने की ज़रूरत है, कहां बरसरे आम नकीर की जाएगी, कहां तन्हाई में समझाने की ज़रूरत है, फिर इसके लिए अल्फ़ाज़ की हरारत व बरूदत क्या हो, लहजे का टम्प्रेचर क्या हो और उसके हुदूद क्या हों, इस फ़र्क़ को अगर नहीं समझा जाएगा तो बात किरदार कशी तक पहुंच जाएगी और बजाए फ़ायदे के नुक़सान हो जाएगा।

इस वक़्त का बड़ा मसला यही है कि कोई काम करने को तैयार नहीं, अलबत्ता दूसरों के कामों पर बेजा नक़्द व एहतिसाब के लिए हर फ़र्द तैयार है और उसको वक़्त का सबसे बड़ा जिहाद समझा जा रहा है और अपने ही अपनों के क़िलों को मिस्मार करने पर लगे हैं।

इस सूरतेहाल को बदलने की ज़रूरत है, सबसे बढ़कर अपना जाएज़ा लेने की ज़रूरत है, वरना दूसरों की ख़ामियां देखते–देखते अपनी ख़ामियों को नज़रअंदाज़ करने का मिज़ाज बन जाता है, मसल मशहूर है कि दूसरों की आंख का तिनका देखने वाले को अपनी आंख का शहतीर भी नज़र नहीं आता।

हदीस में आता है: ''अक़्लमंद वह है जो अपना मुहासबा करता है।'' उसके आगे इरशाद है: ''और मरने के बाद वाली ज़िन्दगी यानि आख़िरत के लिए काम करता है।'' अफ़सोस की बात है कि हमें इसका भी एहसास नहीं होता कि हम यह सब क्यों कर रहे हैं? आख़िरत की कामयाबी का रास्ता क्या है? दुनिया की इज़्ज़त और दौलत कब तक है? कल मरने के बाद सब खुल जाएगा कि कौन ख़ादिम है और कौन मख़दूम? दुनिया की इज़्ज़त और ऐश व आराम की हक़ीक़त क्या है और यह सब कितने दिनों के लिए है?

हम सबको अपना जाएज़ा लेना चाहिए, अपनी ज़िम्मेदारियों को समझना चाहिए और फिर उम्मत की फ़लाह व बहबूद के लिए अल्लाह की रज़ा की ख़ातिर जो बन पड़े वह कर गुज़रना चाहिए, यह मिज़ाज अगर हमारा बन गया तो मुसीबत के पहाड़ पिघलते चले जाएंगे, रास्ते खुलते चले जाएंगे और मंज़िले आसान होती जाएंगी।

रोशनी का मीनार

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

ज़रा चौदह सौ बरस पहले की दुनिया पर नज़र डालिए, ऊंची–ऊंची इमारतों, सोने–चांदी के ढेरों और ज़र्क–बर्क़ लिबासों को छोड़ दीजिए, यह तो आपको पुरानी तस्वीरों के मुरक्क़ा और मुर्दा अजाएब ख़ाने में भी नज़र आ जाएंगे, यह देखिए कि इन्सानियत भी कभी जीती–जागती थी, मश्रिक़ से मग़्रिब और शुमाल से जुनूब तक फिर कर देख लीजिए और सांस रोककर आहट लीजिए, कहीं इसकी नब्ज़ चलती हुई और इसका दिल ढड़कता हुआ मालूम होता है?

ज़िन्दगी के समन्दर में बड़ी मछली छोटी मछली को खाए जा रही थी, इन्सानियत के चंगुल में शेर और चीते, सुअर और भेड़िये बकरियों और भेड़ों को खा रहे थे, बदी नेकी पर, रज़ालत शराफ़त पर, ख़्वाहिशात अक़्ल पर, पेट के तक़ाज़े रूह के तक़ाज़ों पर ग़ालिब आ चुके थे, लेकिन इस सूरते हाल के ख़िलाफ़ इतनी लम्बी–चौड़ी ज़मीन पर कहीं एहतिजाज न था, इन्सानियत की चौड़ी पेशानी पर गुस्से की कोई शिकन नज़र न आती थी, सारी दुनिया नीलामी की एक मन्डी बन चुकी थी, बादशाह व वज़ीर, अमीर व ग़रीब, इस मंडी में सबके दाम लग रहे थे और सब कौड़ियों में बिक रहे थे, ऐसा कोई न था जिसका जौहरे इन्सानियत ख़रीददारों के हौसले से बुलन्द हो और जो पुकार कर कहे कि यह सारी फ़िज़ा मेरी एक उड़ान के लिए काफ़ी नहीं, यह सारी दुनिया और यह पूरी ज़िन्दगी मेरे हौसले से कम थी, इसलिए एक दूसरी अब्दी ज़िन्दगी मेरे लिए पैदा की गई, मैं इस फ़ानी ज़िन्दगी और इस महदूद दुनिया की छोटी सी कस्र पर अपनी रूह को किस तरह फ़रोख़्त कर सकता हूं?

क़ौमों और मुल्कों के और उनसे गुज़र कर क़बीलों और बिरादरियों को और उनसे आगे बढ़कर कुन्बों और घरानों के छोटे से छोटे घरौन्दे बन गए और बड़े–बड़े बुलन्द हिम्मत इन्सान जिनको अपनी सरफ़राज़ी व सरबुलन्दी के बड़े ऊंचे दावे थे, बालिश्तियों की तरह उन घरौन्दों में रहने के आदी बन चुके थे, किसी को उनमें तंगी और घुटन महसूस नहीं होती थी और किसी को उससे ज़्यादा वसीअतर इन्सानियत का तसव्वुर बाक़ी नहीं रहा था, सारी सूद व सौदा और मक्र व फ़न में घिर कर रह गई थी।

इन्सानियत एक सर्द लाश थी, जिसमें कहीं रूह की तपिश, दिल का सोज़ और इश्क़ की हरारत बाक़ी नहीं रही थी, इन्सानियत की सतह पर ख़ुदरो जंगल उग आया था, हर तरफ़ झाड़ियां थीं जिनमें ख़ूंख़ार दरिन्दे और ज़हरीले कीड़े थे या दलदलें थीं जिनमें जिस्म से लिपट जाने वाली और ख़ून चूसने वाली जोकें थीं, इस जंगल में हर तरह का ख़ौफ़नाक जानवर, शिकारी परिन्दा और दलदलों में हर तरह की जोंक पायी जाती थीं, लेकिन आदमज़ादों की इस बस्ती में कोई आदमी नज़र नहीं आता था, जो आदमी थे वह ग़ारों के अन्दर, पहाड़ों के ऊपर और ख़ानक़ाहों और इबादतगाहों की ख़लवतों में छिपे हुए थे और अपन ख़ैर मना रहे थे, या ज़िन्दगी में रहते हुए ज़िन्दगी से आंखे बन्द करके फ़लसफ़ा से अपना दिल बहला रहे थे, या शायरी से अपना ग़म ग़लत कर रहे थे और ज़िन्दगी के मैदान में कोई मर्दे मैदान न था।

दफ़अतन इन्सानियत के इस सर्द जिस्म में गर्म ख़ून की एक रौ दौड़ी, नब्ज़ में हरकत और जिस्म में जुम्बिश पैदा हुई, जिन परिन्दों ने इसको मुर्दा समझकर उसके बेहिस जिस्म की साकिन सतह पर बसेरा कर रखा था, उनको अपने घर हिलते हुए और अपने जिस्म लरज़ते हुए महसूस हुए, क़दीम सीरतनिगार इसको अपनी ज़बान में यूं बयान करते हैं कि किसरा शाहे ईरान के महल के कंगरे गिरे और आतिशे पारस एकदम बुझ गई,

ज़माना–ए–हाल का मुअर्रिख़ इसको इस तरह बयान करेगा कि इन्सानियत की इस अन्दरूनी हरकत से उसकी बैरूनी सतह में इज़्तराब पैदा हुआ, उसकी साकिन व बेहरकत सतह पर जितने कमज़ोर और बोदे क़िले बने हुए थे, उनमें ज़लज़ला आया, मकड़ी का हर जाला टूटता और तिनको का हर घोंसला बिखरता नज़र आया, ज़मीन की अन्दरूनी हरकत से अगर संगीन इमारते और आहनी बुर्ज ख़िज़ा के पत्तों की तरह झड़ सकते हैं तो पैग़म्बर की आमद–आमद से किसरा व क़ैसर के खुदसाख़्ता निज़ामों में तज़लज़ुल क्यों नहीं आया होगा? जिन्दगी का यह गर्म ख़ून जो इन्सानियत के सर्द जिस्म में दौड़ा मुहम्मद रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की बेअसत का वाक़्या है जो मुतमद्दिन दुनिया के क़ल्ब मक्का मुअज़्ज़मा में पेश आया।

आपने दुनिया को जो पैग़ाम दिया उसके मुख़्तसर लफ़्ज़ ज़िन्दगी की तमाम वुसअतों पर हावी हैं, तारीख़ गवाह है कि इन्सानी ज़िन्दगी की जड़ें और उसके झूठे क़स्रे ज़िन्दगी की बुनियादें कभी इस ज़ोर से नहीं हिलाई गईं जैसी इस पैग़ाम "ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्ररसूलुल्लाह" के ऐलान से हिलाई गईं और दुनिया के कुन्द ज़हन पर कभी ऐसी चोट नहीं पड़ी थी जैसी इन लफ़्ज़ों से पड़ी, वह गुस्से से तिलमिला गया और उसने झुंझलाकर कहा: "क्या उन सबको जिनकी हम परिस्तिश करते थे और जिनके हम बन्दे बने हुए थे उड़ाकर एक ही माबूद मक़सूद मुकर्रर कर रखा है? यह तो बड़े अचम्भे की बात है" इस ज़हन के नुमाइन्दों ने फ़ैसला किया कि यह हमारे निज़ामें जिन्दगी के ख़िलाफ़ एक गहरी और मुनज़्ज़म साज़िश है और हमको इसका मुक़ाबला करना है। (उनके सरदार और ज़िम्मेदार एक–दूसरे के पास गए कि चलो अपने माबूदों पर जमे रहो, यह तो कोई तय की हुई बात मालूम होती है)

यह नारा ज़िन्दगी और इन्सानियत के पूरे तसव्वुर पर एक कारी ज़रब थी जो ज़हन के पूरे सांचे और ज़िन्दगी के पूरे ढांचे को मुतास्सिर करती थी, इसका मतलब था जैसा कि आजतक समझा जाता रहा यह दुनिया कोई ख़ुदरौ जंगल नहीं बल्कि यह माली का लगाया हुआ आरास्ता बाग़ है और इन्सानियत इस बाग़ का सबसे आला फूल है, यह फूल जो हज़ारों बहारों का सरमाया है, बेमक़सद नहीं कि मल–दल कर रह जाए, इन्सान के जौहरे इन्सानियत की उस ख़ालिक़ के सिवा कोई क़ीमत नहीं लगा सकता, इसके अन्दर वह लामहदूद तलब, वह बुलन्द हिम्मत, वह बुलन्द परवाज़ रूह और वह मुज़तरब दिल है कि सारी दुनिया मिलकर उसकी तस्कीन नहीं कर सकती और यह सुस्त अनासिर दुनिया इसके साथ नहीं चल सकती, इसके लिए ग़ैरफ़ानी ज़िन्दगी और एक लामहदूद दुनिया दरकार है जिसके सामने यह ज़िन्दगी एक क़तरा और यह दुनिया बाज़ीचा–ए–अत्फ़ाल है, वहां की राहत के सामने यहां की राहत और वहां की तकलीफ़ के सामने यहां की कोई तकलीफ़ हक़ीक़त नहीं रखती, इसलिए इन्सान का फ़ितरी तक़ाज़ा ख़ुदाए वाहिद की इबादत, उसकी ख़ुदशनासी, रज़ा–ए–इलाही की तलब और उसकी ज़िन्दगी उसके लिए जद्दोजहद है, इन्सान को किसी रूह, किसी मख़फ़ी व फ़र्ज़ी ताक़त, किसी दरख़्त और पत्थर, किसी क़िस्म की धात और जमादात, किसी माल व दौलत, किसी जाह व इज़्ज़त, किसी ताक़त व कूव्वत और किसी रूहानियत व अज़मत के सामने बन्दों की तरह झुकने और सब्ज़ा की तरह पामाल होने की ज़रूरत नहीं, वह सिर्फ़ एक बुलन्दी के सामने सबसे ज़्यादा पस्त और सब पस्तियों के मुक़ाबले में सबसे ज़्यादा बुलन्द है, वह सारे आलम का मख़दूम और एक ज़ात का ख़ादिम है, उसके सामने फ़रिश्तों को सज्दा कराकर और उसको अल्लाह के सिवा हर एक के सज्दे से मना करके साबित कर दिया गया कि कायनात की ताक़तें जिनके फ़रिश्ते अमीन हैं उसके सामने सरनिगूं व सर बसुजूद हैं और उसका सर इसके जवाब में अल्लाह के सामने झुका हुआ है।

इस उम्मत का वजूद दुनिया के हर गोशे में माद्दी हक़ीक़तों और जिस्मानी लज़्ज़तों के अलावा एक बिल्कुल दूसरी हक़ीक़त के वजूद का ऐलान है, उसका हर फ़र्द पैदा होकर और मरकर भी इस हक़ीक़त का ऐलान करता है कि दुनिया की ताक़तों से बड़ी एक दूसरी ताक़त है और इस ज़िन्दगी से ज़्यादा हक़ीक़ी दूसरी ज़िन्दगी है।

आख़िरत की खेती

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

अल्लाह तआला ने उख़रवी ज़िन्दगी की ज़मीन' दुनियावी ज़िन्दगी वाली ज़मीन की तरह से नहीं बनायी है, यहां की ज़मीन में अल्लाह तबारक व तआला ने वह सारी चीज़ें रख दी हैं जिनकी इन्सान की ज़रूरत होती है, इस दुनिया का निज़ाम यह है कि अगर इन्सान मेहनत व कोशिश करे तो ग़ल्ला पैदा कर ले और बाग़ लगा ले तो फल हासिल कर ले और जब अल्लाह तआला पानी बरसाता है तो इन्सान अपनी खेती के लिए पानी ले ले, यह सब अल्लाह की तरफ़ से हो रहा है और इसलिए हो रहा है कि हम अपनी ज़िन्दगी चला सकें लेकिन आख़िरत की ज़मीन ऐसी नहीं होगी, वहां की ज़मीन ''खोखली'' होगी, वहां की ज़मीन में कुछ पैदा नहीं होगा, न वहां कोई दरख़्त होगा, न कहीं साया होगा, न ज़मीन में इसकी सलाहियत होगी कि इसमें कुछ पैदा कर ले और न ही वहां कपड़े होंगे, सब इन्सान बरहना होंगे, इसलिए कि जब वह दोबारा पैदा किए जाएंगे तो उनके पास पहनने की कोई चीज़ नहीं होगी, हज़रत आयशा (रज़ि0) ने हुज़ूर (स0अ0व0) से पूछाः ऐ अल्लाह के रसूल! क्या इस दिन सब लोग इस हालत में एक दूसरे को देख रहे होंगे? रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमायाः ''उस वक़्त मामला इससे कहीं ज़्यादा सख़्त होगा, इसलिए किसी को इसका ख़्याल भी न होगा।''

क़यामत के दिन हश्र के मैदान में किसी को कुछ होश नहीं होगा, सब लोग भाग रहे होंगे, उस वक़्त कौन देखेगा कि दूसरा किस हाल में है, वहां हर एक के अपने ऊपर बनी होगी कि हम कहां जाएं और क्या करें, वहां सख़्त तपिश होगी, सूरज बिल्कुल सर पर होगा, तमाम इन्सान पसीने में शराबोर होंगे, न पीने का पानी होगा, न सर छिपाने की जगह होगी, न कोई हमदर्द होगा, ग़रज़ सिवाए बेबसी के और कुछ नहीं होगा।

कुरआन व हदीस में साफ़–साफ़ कह दिया गया है कि ऐसा नाज़ुक वक़्त आने वाला है, लिहाज़ा हम तुमको एक मुद्दत देते हैं, एक ज़िन्दगी देते हैं, इसमें तुम अगली ज़िन्दगी के लिए ख़ूब तैयारी कर लो, हमने तुम्हारे वास्ते यहां के अमल को वहां की पैदावार बना दिया है, जिस तरह आप यहां की ज़मीन पर ग़ल्ला बोएं तो निकलेगा और उससे खेत बनेगा, इसी तरह आप यहां कोई नेक अमल करें तो आपके यहां किसी अमल के करने से वहां की ज़मीन में आपके लिए एक बाग़ तैयार हो जाएगा, आपके यहां के किसी अमल से वहां एक मकान बन जाएगा, जो आपको वहां मिलेगा, अगर किसी ने कोई नेक अमल किया है तो उसके मुताबिक़ उसको वहां वह चीज़ें जो ज़रूरत की हैं मिल जाएंगी, जैसा अमल होगा, जितना अमल, उसी हिसाब से वह चीज़ें बढ़ती जाएंगी, हदीस में आता है कि फ़लां चीज़ से फ़लां चीज़ हासिल होगी, मसलनः

''जो शख़्स ''सुब्हानल्लाहिल अज़ीम वबिहम्दिही'' कहे तो उसके लिए जन्नत में खजूर का एक दरख़्त लगा दिया जाता है।''

''कोई मुसलमान बन्दा नहीं जो अल्लाह के लिए हर रोज़ फ़राएज़ के अलावा बारह रकआत सुन्नतें अदा करे मगर अल्लाह उसके लिए जन्नत में एक घर बना देता है।''

''जिस मुसलमान बन्दे ने भी एहतिमाम के साथ मुकम्मल वुज़ू किया फिर अल्लाह की रज़ा की ख़ातिर हर रोज़ (नफ़िल) नमाज़ अदा की तो वह उसके लिए जन्नत में एक घर बना देता है।''

''जिसने अल्लाह के लिए मस्जिद बनाई, उससे वह अल्लाह की रज़ा चाहता है, तो अल्लाह उसके लिए जन्नत में एक घर बनाएगा।''

आख़िरत की ज़िन्दगी के लिए किये जाने वाले

आमाल की एक बुनियादी शर्त यह है जिसका मज़कूरा अहादीस में भी ज़िक्र है कि हर काम अल्लाह के लिए हो, इसमें अपने नफ़्स का दख़ल न हो, न शोहरत व नामवरी का दख़ल हो, न किसी माद्दी फ़ायदे का, आदमी सिर्फ़ अल्लाह के लिए हर काम करे और यह बहुत मुश्किल काम है, आसान काम नहीं है, जन्नत में यूं ही घर नहीं बन जाएगा, बल्कि नियत का सही होना ज़रूरी है, हम नमाज़ें पढ़ते हैं, रोज़े रखते हैं, लेकिन रोज़े और नमाज़ की जो नियत है, अस्ल दारोमदार उस नियत पर है, नियत जैसी मुख़्लिसाना और सही होगी, उसी के हिसाब से मामला होगा, वरना ज़ाहिर में चाहे कितनी ही उम्दा नमाज़ हो रही हो लेकिन अगर इसमें नियत खोटी है, या उसमें दुनियावी मिलावट की नियत है, तो उसका वह फ़ायदा नहीं होगा जो बताया गया है, इसलिए कि अल्लाह हर एक के दिल का हाल देख रहा है और दिल ही का अस्ल इम्तिहान है, ज़ाहिर का नहीं है, ज़ाहिर तो एक अलामत है दूसरों को देखने की, जिससे अंदाज़ा होता है कि दिल भी ठीक होगा, मसलनः कोई किसी के साथ सुलूक कर रहा है, किसी की मदद कर रहा है, उसमें कई शक्लें हो सकती हैं, हो सकता है कि इसलिए मदद कर रहा हो कि इससे कोई फ़ायदा उठाना है या इसलिए मदद कर रहा हो कि इसमें दुनिया का कोई मक़सद मिला हुआ हो, या यह भी मुमकिन है कि महज़ हमदर्दी में एक इन्सान होने के नाते मदद कर रहा हो, जिसकी अल्लाह के यहां बड़ी क़ीमत है, लेकिन अगर अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए मदद का काम किया है तो कुछ हासिल नहीं होगा।

हदीस शरीफ़ में आता है कि क़यामत के रोज़ अल्लाह तआला बन्दे से पूछेगा कि तुम अपनी ज़िन्दगी में क्या करके आए हो, यानि हमने तुम्हें जो ज़िन्दगी दी थी और दुनिया में अमल की जो मुद्दत दी थी, साठ या पचास साल जो भी मुद्दत थी, हमने यह समझकर दी थी कि इतनी मुद्दत तुम्हारे लिए ज़रूरी है, अब यह बताओ कि तुम दुनिया में क्या करके आए हो? चुनान्चे सबसे पहले एक ऐसा शख़्स लाया जाएगा, जिसने दुनिया में ख़ूब जिहाद किया होगा, उससे मालूम किया जाएगा कि हमने तुमको दुनिया में शुजाअत व जुराअत अता की थी, तुमने इसको कहां इस्तेमाल किया? बन्दा जवाब देगाः मैं तेरी राह में लड़ता रहा, यहां तक कि शहीद हो गया, इरशाद होगाः तुम ग़लत कहते हो, तुमने इसलिए जिहाद में शिरकत की थी कि लोगों में मुजाहिद और बहादुर समझे जाओ और ऐसा ही हुआ, लिहाज़ा तुमने जो चाहा था वह तुम्हें मिल चुका, अब यहां तुम्हारे लिए कोई अज्र नहीं है। इसी तरह एक दूसरा शख़्स लाया जाएगा जिसने दुनिया में वअज़ व नसीहत को अपना मशग़ला बनाया होगा, उसके दिन व रात इसी काम में गुज़रे होंगे और उससे मालूम किया जाएगा कि तुमने हमारी अता की हुई सलाहियतों से दुनिया में क्या काम किया? वह जवाब देगाः मैंने लोगों को तेरी राह में ख़ूब वअज़ व नसीहत की, इरशाद होगाः हां! तुमने यह सब इसलिए किया कि तुमको बहुत बड़ा आलिम समझा जाए, तुमको बड़ा मुत्तक़ी समझा जाए, सो लोगों ने तुमको आलिम समझा, मुत्तक़ी समझा और तुमने जो चाहा वह तुम्हें दुनिया में मिल गया, लिहाज़ा यहां तुम्हारे लिए कुछ नहीं है। इसी तरह एक मालदार शख़्स हाज़िर किया जाएगा और उससे भी इसी क़िस्म का सवाल होगा, वह जवाब देगाः हमें दौलत हासिल हुई तो हमने तेरी राह में ख़ूब खर्च किया और सबकी मदद की, इरशाद होगाः हां! यह सब तुमने इसलिए किया कि लोग तुमको सख़ी समझें और लोगों ने तुमको सख़ी समझा, गोया जो तुमने चाहा वह तुमको दुनिया ही में मिल गया, लिहाज़ा यहां तुम्हारे लिए कुछ नहीं, तुम्हें जो मिलना था वह मिल गया, दुनिया में लोगों ने तुमको ख़ूब सख़ी समझा।

मज़कूरा हदीस में तीन क़िस्म के लोगों (मुजाहिद, आलिम, मालदार) का ज़िक्र है, जिनका अंजाम यह बताया गया है किः

"फिर उसके मुताल्लिक़ हुक्म होगा तो उसको चेहरे के बल घसीट कर जहन्नम में डाल दिया जाएगा।"

इस हदीस से मालूम होता है कि अस्ल मामला नियत का है, हम जो भी अमल करते हैं, उसमें अगर अल्लाह के लिए नियत है तो इस अमल की क़ीमत है और आख़िरत में इस अमल का असर भी ज़ाहिर होगा, मगर यह सबकुछ यहां के अमल से मुमकिन होगा, वहां ऐसा कोई अमल नहीं किया जा सकता जिससे यह सब नेमतें हासिल हों।

सियासी हिकमते अमली की ज़रूरत

मौलाना ख़ालिद सैफुल्लाह रहमानी

इन्सान की अक्ल का इम्तिहान उस वक़्त होता है जब दो नुक़सानदेह चीज़ें उसके सामने हों और उसके लिए कोई तीसरा रास्ता न हो, उसे गढ़े ही चुनना हो, चाहे वह एक छोटे गढ़े को चुने, जिसमें फिसल जाने का अंदेशा हो या वह एक ऐसी खाई को चुने जिसका अंजाम बज़ाहिर हलाकत के सिवा कुछ और न हो, अगर वह आग से बच नहीं सकता, चाहे एक चिंगारी पर से गुज़रे या आग के शोले से गुज़रकर जाना पड़े, तो वह चिंगारी को गवारा कर लेता है, ऐसी सूरतेहाल में इन्सान की अक्ल और उसकी तरजीही सलाहियत को इम्तिहान होता है और उन हालात में बेहतर इन्तिख़ाब ही अस्ल में हिकमत व दानाई है।

अरबी ज़बान के माहिरीन ने लिखा है कि हिकमत का लफ़्ज़ "हकम" से माख़ूज़ है, जिसके माने मामले को दुरूस्त रखने के लिए किसी अमल को रोकने के आते हैं, अल्लाह तआला का इरशाद है कि जिसको अल्लाह तआला ने हिकमत से नवाज़ दिया हो उसे ख़ैरे कसीर अता किया गया। अल्लाह तआला ने लुक़मान (अलै0) की तारीफ़ करते हुए फ़रमाया कि हमने उनको हिकमत से नवाज़ा था। दीन की दावत का काम बड़ा अहम भी है, नाज़ुक भी है और मस्लहत के साथ करने का भी, इसलिए ख़ास तौर पर फ़रमाया गया कि अल्लाह के दीन की तरफ़ हिकमत से बुलाया करो। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि0) को चिमटा लिया और दुआ देते हुए फ़रमायाः ऐ अल्लाह! उसे हिकमत से नवाज़ दीजिए। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः वही आदमी अस्ल में रश्क के लाएक़ हैं, उनमें से एक वह शख़्स है जिसको अल्लाह तआला ने हिकमत से नवाज़ा हो, वह उसके ज़रिये फ़ैसले करता हो और तालीम व तरबियत की ख़िदमत अंजाम देता हो। इस हदीस में इस बात की तरफ़ भी इशारा हो गया कि जब कोई फ़र्द या गिरोह अल्लाह की तरफ़ से हिकमत व दानाई से सरफ़राज़ होता है तो वह सही फ़ैसले कर पाता है।

अच्छे और बुरे हालात से अफ़राद भी दो–चार होते हैं और क़ौमें भी दो–चार होती हैं, कम दर्जा के दुश्मनों और बड़े दुश्मनों से अफ़राद को भी साबक़ा पेश आता है और मिल्लतों को भी, इन्फ़िरादी ज़िन्दगी में तो आम तौर से इन्सान का रवैया यही होता है कि वह कमतर इन्सान को गवारा कर ले और बड़े नुक़सान से अपने आप को बचाए रखे, लेकिन इज्तिमाई ज़िन्दगी में कभी–कभी ऐसे फ़ैसले में क़ौमी जज़्बात हारिज हो जाते हैं और बाज़ तकलीफ़देह वाक़्यात इन्सान को इस दर्जे मुतास्सिर कर देते हैं कि वह अपने फ़ैसले में हिकमत व मस्लहत के पहलू की रिआयत नहीं कर पाता, फिर इसके नुक़सानात इतने दूररस हो जाते हैं कि उनकी तलाफ़ी दुश्वार हो जाती है, तारीख़ में तो इसकी बहुत सी मिसालें हैं, लेकिन ख़ुद हिन्दुस्तान की हालिया तारीख़ में भी इसकी कई मिसालें मिल सकती हैं, जैसे हिन्दुस्तान की तक़सीम का मसला, उस वक़्त बर्रे सग़ीर में उलमा की बड़ी तादाद का ख़्याल था कि मुत्तहिदा हिन्दुस्तान ही मुसलमानों के मफ़ाद में है, मुल्क की तक़सीम मुल्क को भी नुक़सान पहुंचाएगी और मुसलमानों को ख़ास तौर पर इससे नुक़सान पहुंचेगा मगर लोग जज़्बात की रौ में बह गए, उन्होंने उलमा पर लान–तान शुरू कर दिया और उन्हें अक्सरियती फ़िरक़े का एजेन्ट ठहराया गया, अक्सरियत में जो फ़िरक़ापरस्त और चालाक लोग थे, उन्होंने इसकी हक़ीक़त को समझ लिया कि मुसलमानों को छोटा सा होमलैंड देने में हिन्दु अक्सरियत की भलाई है, क्योंकि वह तवील अर्से से महकूमाना ज़िन्दगी गुज़ारते रहे हैं, अब उन्हें एक बड़ा ख़ित्ता हासिल हो जाए और वह पूरी मुतलकुल अनानी के साथ हुकूमत कर सकेंगे, बहरहाल मुल्क तक़सीम हुआ और हज़ारों लोगों की जानें गईं, उनमें मुसलमान भी थे और हिन्दू भी और ज़ाहिर है किसी भी बेक़ुसूर

मरने वाले इन्सान की हलाकत क़ाबिले अफ़सोस है, लेकिन बहरहाल ऐसे मज़लूमों में ग़ालिब अक्सरियत मुसलमानों की ही थी, इस तक़सीम की सज़ा आज तक हिन्दुस्तान के मुसलमान भुगत रहे हैं, इसके नतीजे में जो मुल्क हासिल हुआ वह ऐसा है कि पच्चीस ही साल में दो टुकड़े हो गया और जो कुछ बचा–खुचा हिस्सा मौजूद है, वह खुद अन्दर से टूट रहा है और पूरी दुनिया में बदनामी व रुस्वाई का उनवान बना हुआ है।

हिन्दुस्तान की बाज़ मुसिलम रियासतें 1948ई0 तक मौजूद थीं, क़ौमी सतह के बाज़ मुस्लिम क़ायदीन ने हुकूमते हिन्द को इस बात पर आमादा कर लिया था कि वह चन्द चीज़ों में इश्तराक के साथ इस मुस्लिम रियासत को बाक़ी रहने दे, रियासत के हुक्मरां भी इसके हक़ में थे, क्योंकि मुस्तक़बिल को अपनी आंखों से देख रहे थे कि एक ऐसा मुल्क जिसके पास तरबियत याफ़्ता फ़ौज न हो, हथियारों का ज़ख़ीरा न हो, दोस्त मुल्क से राब्ता न हो और फ़िज़ाइया और बहरिया न हो, वह बड़ी ताक़त का मुक़ाबला नहीं कर सकता, इसलिए उन्होंने सुलह का रास्ता अख़्तियार करने को तरजीह दी, ताकि ख़ूंरेज़ी से बचा जा सके और पुरअम्न तरीक़े पर मसला हल हो जाए, लेकिन कुछ जज़्बाती लोगों ने क़ौम को वरग़लाया और ऐसे दावे करने लगे जो उनकी ताक़त से बाहर थे, नतीजा यह हुआ कि मुल्क भी ख़त्म हुआ और बेशुमार मुसलमान, मर्द–औरत, बूढ़े–बच्चे तहे तेग़ कर दिये गए, मुमकिन है कि इस तरह के फ़ैसले पूरे जज़्बा–ए–खुलूस के साथ किये गये हों, लेकिन यक़ीनन यह हिकमत व मस्लहत और तदब्बुर के तक़ाज़ों के ख़िलाफ़ थे और उनका जो नुक़सान होना था वह हुआ।

अब इस वक़्त हिन्दुस्तान एक दोराहे पर खड़ा है और वतने अज़ीज़ में इस वक़्त मुक़ाबला ख़ैर व शर और नेकी व बदी का नहीं, बल्कि दो बुराइयों का है और उन दो में से कमतर बुराई का इन्तिख़ाब का मरहला दरपेश है, इन हालात में मुसलमानों को गहरे तजज़िये के साथ काम करने और फ़हम व फ़रासत के साथ क़दम आगे बढ़ाने की ज़रूरत है, मुसलमानों को ऐसी इलाक़ाई और क़ौमी सियासी जमाअतों से मुआहिदा की बुनियाद पर मामलात तय करने चाहिएं, जिनको कम से कम सेक्यूलर होने का दावा तो हो, एक खुले एजेन्डे के साथ उनके साथ बातचीत होनी चाहिए, यह बातचीत खुफ़िया भी हो सकती है, अगर मीडिया में ऐसी ख़बरों का आना नुक़सानदेह हो और अंदेशा हो फ़िरक़ा परस्त ताक़ते इसको बहाना बनाकर बिरादराने वतन को उकसाएंगी और अपने वोटबैंक को बढ़ाने के लिए इसका इस्तेमाल करेंगी, हिकमत का एक पहलू यह भी है फ़िरक़ापरस्त ताक़तों को तक़वियत पहुंचाने के दो तरीक़े हो सकते हैं, एक ऐलानिया तौर पर उनकी ताईद है और बदक़िस्मती से बाज़ मुसलमान क़ायदीन मोदी की हिमायत में बयानात भी दे रहे हैं, जिसको बेज़मीरी के सिवा और क्या कहा जा सकता है? दूसरा तक़बा यह है कि जहां एक फ़िरक़ा परस्त पार्टी का मुक़ाबला बराहरास्त किसी सेक्यूलर पार्टी से हो, वहां सेक्यूलर पार्टी की मुख़ालिफ़त में मुहिम चलायी जाए, इससे ग़ैर महसूस तरीक़े से फ़िरक़ा परस्तों को ताक़त हासिल होगी और उनका ख़्वाब शर्मिन्दा–ए–ताबीर हो जाएगा।

हमारे मुल्क में कसीर जमाअती जम्हूरियत का निज़ाम रखा गया है, यह तरीक़ा अवाम के हक़ में बेहतर होता है, क्योंकि उनको दो से ज़्यादा अख़्तियार हासिल होता है, लेकिन बदक़िस्मती से इस वक़्त अमलन हमारा मुल्क दो जमाअती तर्ज़े हुक्मरानी की तरफ़ जा रहा है, कम्यूनिस्ट पार्टियों के ज़वाल की वजह से तीसरा महाज़ निहायत कमज़ोर है और मुस्तक़बिल क़रीब में उठ खड़े होने की सलाहियत नहीं रखता, इन हालात में मुसलमानों को निहायत हिकमत और तदब्बुर से काम लेते हुए क़दम उठाना चाहिए, जहां दो बुराइयों में से किसी एक को अख़्तियार करने पर इन्सान मजबूर हो, वहां कमतर बुराई का इन्तिख़ाब करके बड़े नुक़सान से अपने आप को बचा ले, ऐसी हालत में जबकि हिन्दुस्तान के सियासी आसमान फ़िरक़ापरस्ती की काली घटाएं छायी हुई हैं, अगर हमने फ़रासत–ए–ईमानी और नूरे बसीरत से काम नहीं लिया और जज़्बात, रद्देअमल और नारों में बह गए तो इससे दूररस नुक़सानात का अंदेशा है, ज़रूरत है कि मुसलमान क़ायदीन व रहनुमा पार्टियों की वफ़ादारियों से नीज़ हक़ीर और वक़्ती सियासी मफ़ादात से ऊपर उठकर मिल्लत के मफ़ाद में इत्तिहाद और इज्तिमाइयत के साथ काम करें और मिल्लत के सफ़ीने को भंवर से निकालने की मुख़्लिसाना कोशिश करें।

क्रमवार:

सच्चाई क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

पाक दामनी का हुक्म:

इस्लाम में पाकदामनी का सख़्ती से हुक्म है और पाक दामनी का रास्ता यह है कि आदमी अपनी ताक़त को मस्ख़ न करे, चुनान्चे आता भी है कि बाज़ सहाबा ने अपनी ताक़त को ख़त्म करने की इजाज़त चाही, लेकिन आप (स0अ0व0) ने मना किया और इसको गुनाह क़रार दिया कि यह जाएज़ नहीं है, अल्लाह ने दीगर ताक़तों की तरह यह भी एक ताक़त इन्सान को दी है, मसलनः देखने की ताक़त, बोलने की ताक़त, सुनने की ताक़त इसी तरह एक जिंसी ताक़त भी है, अल्लाह तआला ने इसकी ख़्वाहिश भी रखी है, इसका सही इस्तेमाल करने का हमें हुक्म दिया गया है, अपनी आंखें फोड़ने के लिए नहीं कहा गया है और उस ताक़त को ज़ाया करने का हुक्म नहीं दिया गया है, इसको ख़त्म करने की इजाज़त नहीं है, अलबत्ता यह हुक्म है कि इसका सही इस्तेमाल हो और इसी का नाम अफ़ाफ़ है, अफ़ाफ़ यह नहीं कि इस ताक़त को मिटा दिया जाए और ताक़त ही ख़त्म कर दी जाए, अफ़ाफ़ यह है कि इस ताक़त का सही इस्तेमाल किया जाए, जिस वक़्त रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने इसका हुक्म दिया वह ज़माना जाहिलियत का था और इस बुराई में वह लोग बहुत ही ज़्यादा डूबे हुए थे और इसमें कोई हुदूद नहीं थे, बल्कि सारी नालायक़िया होती थीं और एक–दूसरे से ग़लत ताल्लुक़ात होते थे, इसके लिए बाक़ाएदा औरतें थीं और दस–दस लोग उनमें से एक औरत के पास जाते थे, फिर जब बच्चा पैदा होता था तो वह सब मर्दों को बुलाती थी और जिसको कह देती थी कि यह बच्चा उसका है तो वह बच्चा उसी का क़रार पाता था, इस तरह की और न जाने उन्होंने जानवरों वाली क्या–क्या शक्लें राएज कर ली थीं, इस्लाम ने उन तमाम शक्लों पर पाबन्दियां लगायीं और इसके लिए निकाह का एक वाज़ेह निज़ाम और उसकी मख़सूस शक्लें तय फ़रमायीं।

सिला रहमी:

अबु सुफ़ियान ने हरक़ुल के सामने रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की एक सिफ़त यह भी बयान की कि सिलरहमी का हुक्म देते हैं, ज़माना जाहिलियत में भी रिश्तों को जोड़ने का एक तरीक़ा था जो हक़ीक़त में तोड़ना ही था, वह कहते थे किः

"तुम अपने भाई की मदद करो, ख़्वाह वह ज़ालिम हो या मज़लूम।"

यानि सामने वाला शख़्स अगर तुम्हारा भाई है तो अब वह कुछ भी करे तुम्हें उसका साथ देना है, अगर अच्छा करे तो ठीक और अगर बुरा करे तो ठीक, अगर वह मज़लूम है तो साथ देना है और अगर ज़ालिम है तो भी साथ देना है।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने रिश्तों को जोड़ने का हुक्म दिया और उसके लिए हदें भी तय करीं, इसी तरह रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने रिश्तों को तोड़ने के लिए भी हदें क़ायम कर दीं और इसकी तफ़सील बयान फ़रमाई, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने बताया कि अगर मज़लूम शख़्स तुम्हारा भाई है या तुम्हारा रिश्तेदार है, तो तुम उसके साथ सुलूक करो, तुम उसकी मदद करो, तुम बुरे वक़्तों में उसके काम आओ, लेकिन अगर वह ज़ालिम है और ग़लत रास्ते पर जा रहा है तो उसके साथ देने का यह मतलब नहीं है कि तुम उसकी हिम्मत अफ़ज़ाई करो और ग़लत में उसका साथ दो, बल्कि उसका साथ देने का तरीक़ा यह है कि उसको इस ग़लत काम से, या ज़ुल्म करने से रोक दो और उसको ज़ुल्म से बाज़ रहने के लिए समझाओ और तलक़ीन करो, तुम्हारा अस्ल मदद करना यह है, अगर तुम उसके ख़िलाफ़ कुछ कर रहे हो तो यह मदद नहीं है।

एक मर्तबा रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने सहाबा के मजमे में यह जुम्ला फ़रमाया कि अपने भाई की मदद करो, चाहे वह ज़ालिम हो या मज़लूम।

यानि अपने भाई की मदद करना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है, लेकिन सहाबा (रज़ि0) का मिज़ाज बना हुआ था, इसलिए उन्होंने अर्ज़ कियाः ऐ अल्लाह के रसूल! अगर वह मज़लूम है तो उसकी मदद समझ में आती है, लेकिन

ज़ालिम की मदद कैसे करें? ज़ाहिर है यह सहाबा का बना हुआ मिज़ाज था जिसके नतीजे में उन्होंने सवाल किया, अगर ज़माना जाहिलियत वाला उनका मिज़ाज होता तो वह कहते हां हां बिल्कुल यह तो हमारा तरीक़ा है, हम तो मदद करेंगे और साथ देंगे, अगर हमारा भाई क़त्ल कर रहा है या किसी को क़त्ल करके आया है तो हम उसको बचाएंगे और अगर वह किसी को क़त्ल करना चाहता है तो हम तलवार तेज़ करके उसको देंगे कि जाओ जिसे तुम क़त्ल करना चाहते हो उसे क़त्ल कर दो, लेकिन सहाबा का मिज़ाज बना हुआ था, इसलिए उन्होंने कहाः ऐ अल्लाह के रसूल! ज़ालिम की कैसे मदद की जाए तो रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमाया कि ज़ालिम की मदद यह है कि उसको ज़ुल्म से रोक दो।

सिलारहमी का तक़ाज़ा

बिलाशुब्हा सही माने में यह है रिश्तेदारियों का ख़्याल और इसमें यह देखने की ज़रूरत होती है कि सामने वाले को किस वक़्त किस चीज़ का तक़ाज़ा है, वह बेचारा बददीनी की तरफ़ जा रहा है, नमाज़ नहीं पढ़ता, ग़लत काम करता है, बुरी आदतों में पड़ गया है, डाका डाल रहा है, चोरी कर रहा है तो उसके साथ सिलारहमी यह है कि उसको उन बुराइयों से रोकने की हर मुमकिन कोशिश की जाए, यह हमारे ऊपर शरई ज़िम्मेदारी है, अगर हम यह समझ लें कि वह भाड़ में जाए, वह जो कर रहा है करे, हमसे क्या मतलब? तो हम यह कहकर अपना दामन नहीं बचा सकते, बल्कि हमारे ऊपर ज़िम्मेदारी है कि अगर हमारा भाई ग़लत कर रहा है तो सिला रहमी का तक़ाज़ा है कि उसको ग़लत कामों से रोका जाए और यह सिलारहमी है कि अच्छा काम कर रहा है तो उसकी मदद की जाए, अगर ग़रीब है तो उसके साथ सुलूक किया जाए, अगर बीमार है तो उसकी अयादत की जाए, किसी परेशानी में मुब्तिला है तो उसकी मदद की जाए, यह सिलारहमी है, मगर आजकल उल्टा होता है और लोग अपने भाई का गला काटते हैं, यह लोगों का अजीब मिज़ाज है कि सुलूक भी करना चाहते हैं तो ग़ैरों के साथ सुलूक करते हैं, अपने भाई और भतीजे को देखते हैं कि फ़ाक़े से है, उनके पास इफ़्तार और सहरी के पैसे नहीं, वह दुनिया की मदद करेंगे मगर अपने भाई–भतीजे की मदद नहीं करेंगे क्योंकि अन्दर दरारें पड़ गईं हैं और उसी को लिए बैठे हैं, यह सख़्त गुनाह की बात है, इसीलिए हदीस में आता है कि सिलारहमी यह नहीं कि तुम्हारे साथ कोई अच्छा बर्ताव कर रहा है तो तुम भी अच्छा बर्ताव करो और अगर तुम्हारे साथ कोई बुरा सुलूक कर रहा हो तो तुम भी उसके साथ बुरा सुलूक करो, यह तो मामला बराबर–सराबर कर देने वाला है, हक़ीक़त में सिला रहमी करने वाला नहीं है, बल्कि सिला रहमी करने वाला वह है कि अगर कोई रिश्ता तोड़ रहा है तो उसका रिश्ता जोड़े, अगर कोई उसके साथ बुरा सुलूक कर रहा है तो वह उसके साथ अच्छा सुलूक करे, हमें अस्ल यह हुक्म दिया गया है।

रिश्ते की अल्लाह से फ़रियाद करना

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने सिलारहमी का हुक्म दिया और उसकी पूरी तफ़सीलात बयान फ़रमा दी कि अगर तुम्हारा कोई रिश्तेदार है, अज़ीज़ है तो उसका साथ दो और उसकी मदद करो, अगर वह ज़ालिम है तो ज़ुल्म से रोको, अगर वह मज़लूम है तो उसकी मदद करो और उसकी जो ज़रूरतें हैं वह पूरी करो, यह सिलारहमी का तक़ाज़ा है, अल्लाह तआला क़यामत में रिश्ते को एक जिस्म अता करेंगे और वह अर्शे इलाही का पाया पकड़ कर खड़ा हो जाएगा, हदीस में आता है कि रिश्ता अल्लाह से कहेगा कि ऐ अल्लाह! जिसने दुनिया में मुझे जोड़ा उसे जोड़ दे और जिसने मुझे तोड़ा उसे तोड़ दे।

दोहरा अज्र

सिलारहमी के मुताल्लिक़ अगर ग़ौर किया जाए तो यह एक बहुत अहम मसला है, अच्छे–अच्छे दीनदारों में इसकी बड़ी कोताही होती है और लोग नहीं समझते कि हमारे ऊपर क्या ज़िम्मेदारी है, हालांकि अगर रिश्तेदार को आदमी सदक़ा दे, तो हदीस में आता है कि दो अज्र मिलते हैं, एक सदक़े का अज्र और एक सिलारहमी का, इसी तरह ज़कात वग़ैरह के पैसे भी रिश्तेदार को दिए जा सकते हैं, बल्कि बेहतर है कि पहले मरहले पर उन्हीं को दिए जाएं, अलबत्ता औलाद और मां–बाप को नहीं दिये जा सकते और उनके ऊपर दादा–दादी, नाना–नानी जितने भी हैं, उनको नहीं दे सकते, इसी तरह पोता–पोती, नवासा–नवासी और बेटियों को भी नहीं दे सकते, बाक़ी अगर भाई–भतीजे ग़रीब हों तो उनको दिए जा सकते हैं, यह ज़्यादा बेहतर है, इसलिए कि इसमें दोहरा अज्र मिलता है, एक सिलारहमी का अज्र और दूसरा सदक़े का।

तिलावत और उसके आदाब

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

कुरआन करीम का यह बुनियादी हक़ है कि उसे सही तरीक़े से पढ़ा जाए, बाज़ हज़रात तालीम किताब को बुनियाद बनाकर तिलावत का मर्तबा कम करने की कोशिश करते हैं, लेकिन यह अंदाज़े फ़िक्र दुरूस्त नहीं। कुरआने करीम के हर हक़ को पूरी तरह समझकर उसे अदा करने की कोशिश करना हर तालिबे कुरआन की ज़िम्मेदारी है। तिलावत का हुक्म रसूलुल्लाह (स0अ0व0) को बहुत सी जगहों पर दिया गया है जिससे उसका मुस्तक़िल इबादत होना मालूम होता है, तिलावते आयात रसूलुल्लाह का फ़र्ज़े मंसबी है और उससे तिलावत की अहमियत मालूम होती है, इरशाद है;

(मुझे हुक्म है कि मैं मुसलमान ही रहूं और यह कि कुरआन की तिलावत करता रहूं)

(आपकी तरफ़ जो किताब वही की जा रही है उसकी तिलावत कीजिए)

(अल्लाह वह है जिसने उम्मीयीन में उन्हीं में से एक रसूल मबऊस किया जो उन पर अल्लाह की आयात तिलावत करता है) अलग–अलग जगहों पर तिलावते किताब को एक मुस्तक़िल हैसियत दी गई है, लिहाज़ा उसे मुस्तक़िल इबादत समझकर अंजाम देना तालिबे कुरआन की एक अहम ज़िम्मेदारी है, तिलावत के आदाब व एहकाम पर मुस्तक़िल किताबें लिखी गईं हैं, हम ज़ेल में बाज़ ख़ास एहकाम व आदाब दर्ज करते हैं:

1– तजवीद: किसी चीज़ को उम्दा और ख़ूब मुस्तहकम बनाने का नाम तजवीद है, मख़ारिज की अदायगी और मुकम्मल सेहत के साथ पढ़ने को तजवीद कहते हैं, यह तिलावत का बुनियादी हक़ है, इसलिए तजवीद का बुनियादी इल्म ज़रूर हासिल किया जाए, इसकी ग़रज़ यह है कि अल्लाह की किताब की तिलावत को हर क़िस्म की ग़लतियों से महफ़ूज़ रखा जाए, तजवीद ही से मुत्तालिक़ यह भी है कि किताबुल्लाह की तिलावत में कोई बड़ी या छोटी ग़लती न हो, बड़ी ग़लती को ''लहने जली'' कहते हैं, जैसे ''ते'' की जगह ''तो'' को ''ज़ाल'' की जगह ''ज़े'' पढ़ना, लहने जली करना हराम है। ''लहने ख़फ़ी'' निस्बतन छोटी ग़लती है, यह मकरूह है, जैसे मद न करना या ग़िना छोड़ देना वग़ैरह।

कुरआन की तिलावत हमेशा ''अऊज़ बिल्लाह'' और ''बिस्मिल्लाह'' से की जाए, अक्सर हज़रात इसे मुस्तहब क़रार देते हैं, सूरह के शुरू में तिलावत हो तो ''बिस्मिल्लाह'' ज़रूर पढ़ी जाए, दरमयान में सूरह के तिलावत हो तो भी ''बिस्मिल्लाह'' कहना बेहतर है।

2– तिलावत बावजू करे, बिलख़ुसूस मुंह पर कोई गन्दगी हो तो उसे दूर करे।

3– जहां तिलावत करे वह जगह भी पाक व साफ़ हो, इसीलिए बाज़ हज़रात ने मस्जिद में तिलावत करने का और अफ़ज़ल बताया है।

4– क़िब्ला रू तिलावत करना और अच्छा अमल है, हालांकि किसी भी रुख़ करना जाएज़ है।

5– बाअदब बैठकर तिलावत करना बहुत अच्छा अमल क़रार दिया गया है, गरचे खड़े, बैठे, लेटे तिलावत में कोई हर्ज नहीं।

6– अगर अरबी जानता हो तो अपनी तिलावत पर ग़ौर भी करता रहे, ताकि कुरआन करीम के असरात दिल पर मुरत्तब हों।

7– तिलावत के दौरान कभी मुहब्बत व ख़ौफ़ का ग़ल्बा होता है, ऐसी सूरत में रोना बेहतर है, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का इरशाद है: (कुरआन पढ़ो और रोओ) अगर रोना न आए तो रोते बनो।

8– कुरआन करीम ठहर–ठहर के पढ़े: (और कुरआन को ठहर–ठहर कर पढ़िए) का यही मफ़हूम है, रसूल–ए–अकरम (स0अ0व0) जब तिलावत फ़रमाते तो एक–एक हर्फ़ साफ़ होता था, बहुत जल्दी–जल्दी पढ़ने से मना किया गया है, जिसमें अल्फ़ाज़ और हर्फ़

साफ़ न हों।

9— गाहे बगाहे रहमत की आयत तिलावत करे तो अपने लिए अल्लाह की रहमत चाहे, उसमें औरों के लिए दुआ करना भी बेहतर मालूम होता है, आयते अज़ाब से गुज़रे तो अल्लाह के अज़ाब से पनाह चाहे।

10— कुरआन करीम का बहुत एहतिराम करे, कुरआन सामने रखकर लताएफ़ सुनाना, हंसना, बेकार की बातें करना सब मना है, कोई ज़रूरी बात करनी हो तो कोई हर्ज नहीं, वरना कुरआन बंद करके एक किनारे रख दे और अपने कामों में लग जाए।

11— कुरआन की तिलावत अरबी ज़बान में करे, आजकल ग़ैर अरबी ज़बानों में भी कुरआन करीम लिखा जा रहा है, इस तरह लिखना भी दुरुस्त नहीं और ग़ैर अरबी में तिलावत भी सही नहीं, बल्कि ग़ैर अरबी ज़बान में कुरआन की सही तिलावत मुमकिन ही नहीं, इससे बचा जाए।

12— कुरआन करीम देखकर तिलावत करने को अफ़ज़ल क़रार दिया गया है, अलबत्ता अगर कोई बिना देखे अपनी याददाश्त से आसानी से पढ़ लेता है तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं है।

13— तिलावत में आवाज़ कुछ बुलन्द रखे, इससे कान भी तिलावत करने के नूर से मुनव्वर होते हैं, अलबत्ता आवाज़ इतनी बुलन्द न हो कि दूसरों को परेशानी हो, क़रीब में कोई सो रहा हो तो तिलावत में उसकी रिआयत करना ज़रूरी है।

14— अच्छी से अच्छी आवाज़ में कुरआन पढ़ने की कोशिश करे, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का इरशाद है: (कुरआन करीम को अपनी आवाज़ से सजा दो)

तिलावते कुरआन के साथ किताब की तालीम पाना भी निहायत ज़रूरी है, ताकि बन्दे को मालूम हो जाए कि उसका रब उससे क्या चाहता है? यह चीज़ तालीम के बिना हासिल नहीं हो सकती, पैग़म्बर का यह एक अहम फ़र्ज़े मन्सबी था, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने उम्र भर अल्लाह की किताब की तालीम दी, सहाबा उससे आरास्ता हुए और पूरे आलम को कुरआन के नूर से मामूर किया।

एक तबक़ा सिर्फ़ तिलावत की हद तक रहता है और यह जानने की कोशिश नहीं करता कि किताबे इलाही में उसके लिए क्या कुछ हिदायत का सामान है, यह भी कुरआन करीम की नाक़िस नुमाइन्दगी है, किसी मोतबर तफ़सीर या मोतबर आलिम से किताबे इलाही की हिदायात को ज़रूर मालूम कर ले ताकि पूरी ज़िन्दगी कुरआन के ढांचे में ढल जाए।

हिकमत दीन की पूरी समझ को कहा जाता है, इसको तफ़क़ा फ़िद्दीन कहते हैं, अल्लाह की किताब से वाबस्तगी पर जो ख़ास दीनी हिस नसीब होती है वह दर हक़ीक़त हिकमते कुरआन का एक हिस्सा है, इसीलिए बाज़ हज़रात के नज़दीक अल्लाह की तरफ़ से मिलने वाले ख़ास फ़हम को हिकमत कहते हैं जिससे हर चीज़ को समझना आसान हो जाए और हक़ की याफ़्त मुमकिन हो, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की पूरी सुन्नत और शरई एहकामात की वज़ाहत को भी हिकमत कहा गया है, इसी तरह इस फ़ैसलाकुन ताक़त को भी हिकमत कहते हैं जिससे हक़ व बातिल को जुदा–जुदा करना आसान हो जाए।

लुग़त में हिकमत इस फ़हम व दानाई को कहते हैं, जिसके ज़रिये सही फ़ायदे का हुसूल आसान और हर क़िस्म के नुक़सान से बचना मुमकिन हो, कूव्वते फ़ैसला को भी हिकमत कहते हैं, किसी चीज़ को सही–सही जानकर उससे फ़ायदा उठाने को भी हिकमत कहा गया है, किताब के साथ जहां कहीं भी हिकमत का लफ़्ज़ आता है वहां अक्सर व बेशतर तालीमाते नबवी मुराद होती हैं, जिनसे बढ़कर नस्ले इन्सानी के लिए और चीज़ मुफ़ीद नहीं, बाक़ी अल्लाह की किताब की सिफ़त ही "अलहकीम" है, किताब व सुन्नत को समझने से जो दीनी फ़हम नसीब होता है, उससे बढ़कर इन्सान के लिए कोई चीज़ मुनाफ़ा बख़्श नहीं इमाम शाफ़ई (रह0) "अलहिक्मह" से मुराद सुन्नते रसूल को लेते हैं, शायद यही इसका सबसे जामेअ मफ़हूम हो।

इस लिहाज़ से दुआह की यह ज़िम्मेदारी है कि पहले वह खुद कुरआनी इन्सान बने फिर कुरआन की दावत पेश करें, हामिले कुरआन बने बग़ैर दावते कुरआन सिर्फ़ ज़ाब्ते की कार्यवाही बन कर रह जाता है, जिसमें मतलूबा तासीर पायी नहीं जाती और बातें सिर्फ़ हवाई बनकर रह जाती हैं।

जानवरों की ज़कात

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

हमारे यहां बड़ी तादाद में जानवरों को पालने का रिवाज नहीं है, अगर डेरी वग़ैरह में ज़्यादा तादाद में पाले भी जाते हैं तो उनमें ज़कात वाजिब होने की शराएत आम तौर पर नहीं पायी जाती हैं, लेकिन अरबों की अस्ल मआश मवेशियों के पालने पर मुन्हसिर थी, ख़ास तौर से ऊंट कसरत से पाले जाते थे, इसीलिए अहादीस और फ़िक़्ही किताबों में मवेशियों की ज़कात का तज़किरा बड़ी तफ़सील से नज़र आता है, हम क़ारईन के इल्म के लिए इस सिलसिले की मुख़्तसरन बहस पेश कर रहे हैं:

जानवरों में ज़कात वाजिब होने की शर्तें:

जानवरों में ज़कात उसी वक़्त वाजिब होगी जब नीचे लिखी हुईं शर्तें पायी जाएं:

1. वह जानवर दूध हासिल करने या नस्ल बढ़ाने के मक़सद से पाले गए हों, अगर खेत की जुताई के लिए या सवारी के लिए या गोश्त खाने के लिए पाला हो तो उन पर ज़कात वाजिब नहीं होगी। (बदाएः 2/126)

2. जानवर तीन जिन्सों (ऊंट, गाय–भैंस, भेड़–बकरी) में से हों तभी ज़कात वाजिब होती है, इसीलिए घोड़े, खच्चर, गधे वग़ैरह, इसी तरह हिरन, नील गाय जैसे जंगली जानवरों में ज़कात वाजिब नहीं होगी इल्ला यह कि उनकी तिजारत करता हो। (बदाएः 2/126)

3. वह जानवर साइमा हों, यानि साल का अक्सर हिस्सा चरकर गुज़ारते हों, चुनान्चे अगर आधे साल या उससे कम चरकर गुज़ारते हों, या जिनको डेरी या घर में चारा मुहैया किया जाता हो, तो चाहे जितनी तादाद में हों, उनकी ज़कात मालिक पर वाजिब नहीं होगी। (बदाएः 2/126)

4. वह जानवर इतने सेहतमंद हों कि उनकी बढ़ोत्तरी मुमकिन हो, अगर उनकी सेहत बढ़ोत्तरी के लाएक़ न हो, यानि सब बच्चे या ऐसे माज़ूर हों कि उनकी बढ़ोत्तरी मुमकिन न हो तो उनकी ज़कात वाजिब नहीं होगी।
(फ़तावा ख़ानिया अली हामिश अलहिन्दियाः 1/248)

5. जानवर उस तादाद तक पहुंच जाएं जिस तादाद के मुकम्मल होने पर ज़कात वाजिब हो जाती है (जिसकी तफ़सील आगे आ रही है) और उन पर साल गुज़र जाए। (शामीः 2/17)

ऊंट की ज़कातः

ऊंट की ज़कात का ज़िक्र अहादीस और फ़िक़ह की किताबों में बड़ी तफ़सील से आया है, हम मुख़्तसरन ज़रूरी मसाएल का ज़िक्र करते हैं:

1. पांच ऊंट से कम हों तो उन पर कोई ज़कात नहीं है, इसलिए कि हज़रत अबूसईद ख़ुदरी (रज़ि0) की रिवायत बुख़ारी और मुस्लिम ने नक़ल की है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः पांच ऊंट से कम में ज़कात नहीं है, फिर पांच से नौ ऊंट तक एक साला बकरी या बकरा वाजिब है और दस से चौदह ऊंट तक दो एक साल की बकरी या बकरा वाजिब है और पन्द्रह से उन्नीस ऊंट पर तीन एक साल की बकरी या बकरा और बीस से चौबीस तक चार बकरी या बकरा वाजिब है, बुख़ारी की रिवायत में हज़रत अनस (रज़ि0) ने हज़रत अबूबक्र (रज़ि0) के हवाले से यही तफ़सील नक़ल की है। (अलबहरुर्राएक़ः 2/215)

2. फिर पच्चीस से पैंतीस तक एक साला ऊंटनी वाजिब होती है, एक साला ऊंटनी को अरबी में बिन्ते मख़ाज़ कहा जाता है।

3. छत्तीस से पैतालिस तक दो साला ऊंटनी जिसको बिन्ते लबून कहते हैं।

4. छियालिस से साठ तक तीन साला ऊंटनी जिसको हक़्क़ा कहते हैं।

5. इकसठ से पिचहत्तर तक चार साला ऊंटनी जिसको जज़आ कहते हैं।

फिर आगे ख़ासी तवील फ़ेहरिस्त के बारे में अहादीस और फ़िक़ह में बहस की गई है, लेकिन मेरे ख़्याल से हिन्दुस्तान में इसकी ज़रूरत बहुत कम पेश आती है, किसी को ज़रूरत पेश आए तो किसी मुस्तनद आलिम से मालूमात हासिल कर ले।
(हिन्दियाः 1/177–सही बुख़ारीः 1454)

ऊंट की ज़कात के चंद ज़रूरी मसाएल:

1. ऊंट की ज़कात में जब बकरी वाजिब हो रही हो तो नर–मादा दोनों दे सकता है, लेकिन जब ऊंट से वाजिब हो रही हो तो मादा दिया जाएगा, इसलिए कि बुख़ारी की मज़कूरा हदीस में मादा ही का ज़िक्र है। अलबत्ता मादा मौजूद न हो तो नर दिया जा सकता है, लेकिन मादा की क़ीमत के हिसाब से कमी–बेशी को रूप्यों के ज़रिये से दूर किया जाएगा। (बदाए: 2 / 131)

2. अगर जिस उम्र का जानवर वाजिब हो रहा है वह मौजूद नहीं है, तो इससे कम उम्र वाला दिया जा सकता है और उम्र के तफ़ाउत की वजह से क़ीमत में जो कमी हो रही है, उसको रूप्यों से पूरा कर दिया जाएगा और वाजिब से बड़ा जानवर मौजूद हो तो वह दे दिया जाए और बढ़ी हुई क़ीमत को वापस ले लिया जाए, इस सूरतेहाल में जानवर के बजाए क़ीमत से भी ज़कात अदा की जा सकती है, हदीस में इसकी इजाज़त मौजूद है। (हिन्दिया: 1 / 177)

3. अगर कुछ जानवर ऐबदार हों, मसलन: लूले–लंगड़े–अंधे वग़ैरह हैं तो उनको भी शुमार किया जाएगा, लेकिन उनसे अदायगी नहीं की जाएगी। (हिन्दिया: 1 / 177)

गाय–भैंस की ज़कात:

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि0) नबी करीम (स0अ0व0) से रिवायत करते हैं कि आपने फ़रमाया: तीस गाय या भैंस में "तबीअ या तबीआ वाजिब है और चालिए में मुसन्ना वाजिब है।" (तिरमिज़ी: 622)

तबीअ एक साल के बछड़े को कहते हैं और मुसन्ना दो साल को कहते हैं, हदीस से मालूम हुआ कि गाय–भैंस की ज़कात में नर–मादा दोनों दे सकते हैं। 29 जानवर हों तो कुछ भी वाजिब नहीं होगा, फिर 30 जानवर हो जाएं तो एक साल का नर या मादा बछड़ा वाजिब होगा, फिर 39 तक यही वाजिब रहेगा, फिर चालिस हो जाएं तो मुसन्ना 2 साल का बछड़ा वाजिब होगा, फिर मुफ़्ता बिही क़ौल के मुताबिक़ 59 तक एक दो साल का बछड़ा ही वाजिब रहेगा, फिर जब तादाद 60 जानवर तक पहुंच जाए तो चूंकि इसमें दो तीस पाए जा रहे हैं, लिहाज़ा इसमें दो तबीअ (एक साल के बछड़े) वाजिब होंगे, 69 तक यही वाजिब होंगे, फिर जब तादाद सत्तर तक पहुंच जाए तो चूंकि इसमें एक तीस का और एक चालीस का अदद मौजूद है, लिहाज़ा एक तबीअ और मुसन्ना 79 की तादाद तक यही वाजिब रहेगा, फिर जब तादाद 80 तक पहुंच जाए तो 89 तक दो मुसन्ना वाजिब होंगे, इसलिए कि इसमें चालीस के दो अदद मौजूद हैं, फिर इसी तरह दस की तादाद बढ़ने पर हर तीस पर तबीअ और हर चालीस पर मुसन्ना बढ़ता रहेगा और जहां तीस या चालीस दोनों पर तक़सीम हो सकती हो तो वहां अख़्तियार है कि चाहे मुसन्ना का हिसाब लगाए या चाहे तबीअ का, मसलन 120 में चार तीस मौजूद हैं और तीन चालीस मौजूद हैं तो चाहे चार तबीअ दे या चाहे तीन मुसन्ना दे। (शामी: 2 / 19–20)

भेड़–बकरी की ज़कात:

हज़रत अनस (रज़ि0) ने हज़रत अबूबक्र (रज़ि0) से जो तवील रिवायत नक़ल की है उसमें बकरियों के बारे में रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया: और साएमा बकरियों की ज़कात जब वह चालीसे से एक सौ बीस तक हों एक बकरी है और जब वह एक सौ बीस से बढ़ जाएं तो दो सौ तक दो बकरियां हैं, फिर जब दो सौ से बढ़ जाएं तो तीन सौ तक तीन बकरियां हैं, फिर जब तीन सौ से बढ़ जाएं तो हर सौ बकरी पर एक बकरी वाजिब होगी। (बुख़ारी: 1454)

यही तफ़सील फ़िक्ही किताबों में भी है, यानि चालीस से कम हों तो कोई ज़कात नहीं है, फिर चालीस हो जाएं तो एक एक साल की बकरी या बकरा वाजिब है, वग़ैरह वग़ैरह। (हिन्दिया: 1 / 178)

जिस तरह भैंस और गाय एक जिंस मानी जाती हैं और एक को दूसरे से मिला लिया जाता है, इसी तरह भेड़ और बकरी एक जिंस हैं और उनकी तमाम अक़साम को मिलाकर हिसाब लगाया जाता है और ज़कात उस जिंस से निकाली जाती है जिसकी तादाद ज़्यादा हो और अगर सब बराबर हों तो जिस जिंस से चाहे निकाल ले।

वह जानवर जिनपर ज़कात नहीं है:

1. घोड़ों पर मुफ़्ता बिही क़ौल के एतबार से ज़कात नहीं है, इल्ला यह कि तिजारत के लिए हों, तो सामाने तिजारत के एतबार से उन पर ज़कात होगी, चुनान्चे मुत्तफ़िक़ अलैह रिवायत में इसका ज़िक्र सराहत से है। (बुख़ारी: 1463)
2. यही हुक्म गधे, खच्चर और शिकारी कुत्तों का है।
3. अगर जुताई या सामान लादने के लिए जानवर हों तो उन पर ज़कात नहीं है।
4. सब जानवर बच्चे हों तो ज़कात वाजिब नहीं, एक भी मुसन्ना उनके साथ हो तो सब पर ज़कात होगी। (हिन्दिया: 1 / 178)

अल्लाह की तरफ़ रुजूअ

मोहम्मद तारिक़ बदायूंनी

बिला शुब्हा इन्सान एक मख़लूक़ है, जिसका ख़ालिक़ एक है और ख़ालिक़ व मख़लूक़ के रिश्ते का तक़ाज़ा है कि इन्सान उसी ख़ालिक़ की तरफ़ रुजूअ करे, लेकिन आज अलमिया यह है कि इन्सानियत नवाज़ी नदारद है, हमने अपनी क़द्रों को खुद ही पामाल कर लिया है। हम बिला किसी मक़सद और बिला किसी मिशन के ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं और अगर मक़सद है भी तो सिर्फ़ रोटी–कपड़ा और चैन की नींद सोना।

अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने इस कायनात में हर शै कारामद और बामक़सद पैदा की है और इन्सान का मक़सद अल्लाह की इबादत करना और उसी की पैरवी बजा लाना है। अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त इन्सानों को ख़ास करके मुसलमानों को शिर्क व बिदआत और तमाम बुराई के कामों से बाज़ रहने की तलक़ीन करता है। जा–बजा इस मफ़हूम को कुरआन मजीद में उजागर किया गया है, वह चाहता है कि बन्दे उसी की जानिब खिंचकर चले आएं, उसके मबऊस कदरा रसूलों के नक़्शे क़दम पर चलें क्योंकि वह अपने बन्दों से सत्तर माओं से भी ज़्यादा मुहब्बत करता है। यही वजह है कि रब्बुल आलमीन ने इन्सान को अशरफुल मख़लूक़ात का ख़िताब भी बख़्शा है।

कुरआन मजीद में वारिद है "अल्लाह की जानिब दौड़ पड़ो" यानि अल्लाह ही के होकर रह जाओ मतलब यह कि जो चीज़े ज़ाहिरी व बातिनी अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त को नापंसद हैं, उन्हें छोड़कर उन चीज़ों की तरफ़ फ़रार होना जो अल्लाह को पसंदीदा हैं जैसे जिहालत से फ़रार होकर इल्म की तरफ़ आना, कुफ़्र से फ़रार होकर ईमान की तरफ़ आना, अल्लाह की नाफ़रमानियों से फ़रार होकर इताअत की तरफ़ आना, क्योंकि अल्लाह की जानिब पलटने में अमन, मसर्रत, सुकून, सआदत और फ़ैज़ व फ़लाह पोशीदा है।

अल्लाह की जानिब पलटकर आना कोई मुश्किल काम नहीं है। अगर इन्सान खुद की ख़लक़त में ग़ौर व फ़िक्र कर ले तो बा आसानी अल्लाह के साया–ए–रहमत में जगह पा सकता है। इरशादे रब्बानी हैः "क़रीब ही हम उन्हें अपनी निशानियां दिखाएंगे कायनात में और उनकी ज़ातों में यहां तक कि उनके सामने यह बात साफ़ हो जाएगी कि वही हक़ है" यक़ीनन इस अमल से हक़ दो–दो चार की तरह वाज़ेह हो जाएगा।

एक जगह रब्बुल आलमीन खुला ऐलान करता हैः "और दौड़ो अपने रब की तरफ़ मग़्फ़िरत के लिए" हम देखते हैं कि कहीं ज़रा से डिस्काउन्ट पर कोई सेल लग जाए तो कैसे लोग लपक–लपक कर ख़रीदारी के लिए जाते हैं, बिल्कुल इस मफ़हूम को अल्लाह ने यहां बयान फ़रमाया है कि ऐ बन्दों, जल्दी से आ जाओ और मग़्फ़िरत चाह लो, मैं मग़्फ़िरत कर दूंगा। मफहूम वाज़ेह है कि हमें इस सुनहरे मौक़े से भरपूर फ़ायदा उठाना चाहिए क्योंकि किसे मालूम कि कब और कहां मौत का शिकंजा हम पर कस दिया जाए और किस वक़्त मोहलते अमल ख़त्म हो जाए।

एक जंग के मौक़े पर रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने सहाबा को ख़िताब करते हुए फ़रमायाः दौड़ो जन्नत की तरफ़ जिसकी वुसअत आसमान व ज़मीन से भी ज़्यादा है। एक सहाबी–ए–रसूल उस वक़्त खजूरें खा रहे थे, जैसे ही यह आवाज़ उनके कान में पड़ी तेज़ी से जंगी सफ़ों में घुस गए और जामे शहादत नोश फ़रमा लिया। यह वाक़्या हमारे लिए बड़ी अहमियत का हामिल है। आजकल देखने में आता है कि मुअज़्ज़िन मग़्फ़िरत व रहमते इलाही की जानिब बुला रहा होता है और हम अपने हक़ीक़ी मक़सद से बेख़बर खुशगप्पियों में लगे होते हैं।

मसला यह है कि खुदा से दूरी कुरआन मजीद और हदीसे नबवी को पसे पुश्त डाल देने से हुई है। जैसा कि

रसूलुल्लाह (स०अ०व०) ने एक मौक़े पर फ़रमाया था: "मैं तुम्हारे दरमियान दो चीज़ें छोड़ता हूं जब तक उसको पकड़े रहोगे गुमराह नही होगे; अल्लाह की किताब और उसके नबी की सुन्नत" और हमने ऐसा न किया। एक सबब यह भी है कि आज माद्दा परस्ती का दौर दौरा है। चारों तरफ़ उसी का डंका बज रहा है। ज़रूरत है माद्दियत परस्ती छोड़ खुदापरस्ती की जानिब क़दम बढ़ाएं जाएं। खुदा को पहचानें, दूसरी क़ौमों से इबरत पकड़ें।

इसी तरह आजकल टेक्नालाजी ने भी किसी हद तक लोगों को मुतास्सिर किया है। ख़ासकर सोशल मीडिया के मनफ़ी इस्तेमाल ने मुसलमानों को रब से ग़ाफ़िल करके रख दिया है। अख़्लाक़ियात बिगाड़ का शिकार हैं। भाईचारगी का ख़ात्मा होता जा रहा है। सबके सब "बेशक मोमिन भाई–भाई हैं" का पैग़ाम भूल चुके हैं। आख़िर इन सबका हल और इलाज क्या है?

आज के दौर में इन्सान की दिलचस्पी के मराकिज़ मुख़्तलिफ़ हैं जिनमें माद्दे का ग़ल्बा है और इन्सानियत की फ़लाह व नजात माद्दा परस्ती से निकलकर खुदा परस्ती की जानिब रुजूअ करना है। इस मौक़े पर एक हदीस क़ुदसी का मफ़हूम बयान करना बेहतर होगा: "जब बन्दा मुझसे एक बालिश्त क़रीब होता है तो मैं उससे एक गज़ क़रीब हो जाता हूं और जब वह एक गज़ क़रीब हो जाता है तो मैं उससे एक हाथ क़रीब हो जाता हूं और जब वह चलकर आता है तो मैं उसकी तरफ़ बढ़कर आता हूं।"

ज़रूरत इस बात की है कि अल्लाह के नाफ़िज़ करदा एहकामात व अवामिर की बजाआवरी में सबक़त करना चाहिए, इसीलिए तो सहाबा किराम नेकी की तरफ़ जल्दी किया करते थे और फिर मोमिन का ख़ास्सा भी है कि वह अवामिर व नवाफ़िल को अव्वल मरहले में अंजाम देता है और नेकी के तमाम कामों में सबक़त करता है, अल्लाह की जानिब रुजूअ करने से कभी पीछे नहीं हटता, ज़ाहिर है कि हर बन्दा किसी न किसी दर्जे में गुनाहगार है और उससे निकलने की वाहिद वजह सिर्फ़ यही है कि अल्लाह वाहिद की जानिब रुजूअ किया जाए।

अबु अब्दुल्लाह अलबत्तानी (एस्ट्रोनोमर)

फ़ल्कियात के शोबे में अबूअब्दुल्लाह मुहम्मद बिन जाबिर सनान अलबत्तानी (Albategnius) की ख़िदमात और दरयाफ़्तें बहुत अहम हैं, तारीख़े इस्लाम में किसी दूसरे माहिरे फ़ल्कियात का तज़्किरा नहीं मिलता जो सितारों का मुशाहदा करने और उनकी हरकात को जांचने में इस मर्तबा–ए–कमाल को पहुंचा हो, फ़िलप के. हिट्टी के बक़ौल "अलबतानी एक हक़ीक़ी मुहक़्क़िक़ थे।" (Al-Battani was an original research worker)

अलबत्तानी ने अपने मुशाहदे का सिलसिला 877ई० से लेकर 918ई० तक जारी रखा, उनके मुशाहिदे की रोशनी में मशहूर यूनानी हैयतदां बतलिमोस की ग़लतियों की निशानदेही करके उनकी तस्हीह की और उनके बताए हुए ग़लत तख़्मीनों की जगह दुरुस्त और सही या कम से कम आज की तस्लीम शुदा मिक़दारों से बड़ी हद तक क़रीब क़ीमतें दरयाफ़्त कीं:

"As a very skilled naked eye observer he refined the sets of solar, lunar and planetary motion data found in PTOLEMY's greatwork."

अलबत्तानी का ऐतराफ़ मश्रिक़ व मग़्रिब के उलमा सदियों से करते रहे, तारीख़े इस्लाम में किसी दूसरे माहिरे फ़लकियात का तज़्किरा नहीं मिलता जो सितारों का मुशाहिदा करने और उनकी हरकात के जांचने में इस मर्तबा–ए–कमाल को पहुंचा हो। विल ड्रोन ने इनके मुशाहिदात की महारत का एतराफ़ इन बुलन्द अल्फ़ाज़ में किया है:

"Remarkable for their range and accuracy." **(दूररसी और दुरुस्ती के लिहाज़ से ग़ैर मामूली)**

इबरत की आंखों से देखिये

मौलाना हिफ्ज़ुर्रहमान साहब (रह०)

क़ानून यह है कि क़ौम और उम्मत को हुकूमत व शासन दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक अल्लाह की विरासत की पहचान और दूसरे दुनिया के कारणों व साधनों की पहचान। पहले प्रकार में किसी क़ौम को जब शासन दिया जाता है कि उसके अक़ीदे व आमाल में पूरी तरह अल्लाह की विरासत काम करती है। यानि अल्लाह तआला के साथ उसका रिश्ता–ए–अक़ीदत भी सही और ठीक हो और वो व्यक्तिगत व सामूहिक आमाल भी सलाह व ख़ैर के साथ इस दरजा पर आकर कुरआन अज़ीज़ की इस्तलाह में इसको "सालहीन" में गिना जा सके।

ये क़ौम बेशक उसकी मुस्तहक़ है कि वो खुदा के इस ईनाम से वाक़िफ़ हो जिसका विषय "ख़िलाफ़त–ए–ईलाहिया" और जो हक़ीक़त में दुनिया में खुदाए तलाआ की नयाबत का मज़हर और अम्बिया व रसूलों की पाक विरासत है। खुदा का वादा है कि जो क़ौम भी अक़ीदों व आमाल में अम्बिया व रसूलों की विरासत से लाभान्वित है वो जमीन की विरासत की भी मालिक होगी और अगर दुनयावी वजहों के पहाड़ भी उसके बीच में आ जांएगे तो उस सबको खत्म करके खुदा अपना वादा ज़रूर पूरा करेगा। इसलिये इरशाद है:

(और हमने बेशक ज़बूर में नसीहत के बाद ये लिख दिया कि ज़मीन के वारिस मेरे नेक बन्दे होंगे)

और आयत: (बेशक ज़मीन अल्लाह की ही मिल्कियत है वो अपने बन्दो में से जिस को चाहता है वारिस बना देता है)

उसकी मर्ज़ी का यही फ़ैसला है कि ज़मीन में विरासत उन्ही को नसीब होती है जो इसके "सालेह बन्दे" हैं और अगर किसी क़ौम या उम्मत में योग्यता नहीं है तो चाहे वो इस्लाम की दावेदार ही क्यों न हो जो उसको ज़मीन की विरासत नसीब नहीं हो सकती और अल्लाह की खिलाफ़त इसका हक़ नहीं बन सकती है। और न उस क़ौम की अज़मत व इज्ज़त के लिये खुदा के पास कोई वादा है। जबकि खुदा की मर्ज़ी अपनी हिकमत व मस्लहत के पेश नज़र कायनात की व्यवस्था की ख़ातिर जिसको चाहती है हुकूमत अदा कर देती है। और जिससे चाहती है ले लेती है और इस लेने देने में इसका क़ानून–ए–कुदरत इसी तरह काम करता है जिस तरह साधनो को कारण बनाने के साथ लगाना पड़ता है। और इस लेने व देने के लिये इतने अधिक अलग–अलग और बेशुमार मसलहे होते हैं कि इन्सान इसकी हक़ीक़त तक रसाई से आजिज़ है और इस सिलसिले की सबसे भयानक बदबख़्त सूरत ये है कि मुसलमान "ग़ुलाम व महकूम" हों और कुफ्र व शिर्क की हुकूमत इन पर शासन कर रही हो। मानो ये खुदा का ऐसा अज़ाब है जो मुसलमानों के लिये बुरे कामों और सलाह व ख़ैर के योग्यता के नष्ट होने के कारण सामने आता है। और उस हालत में इबरत का मक़ाम ये होता है कि साहबे तख़्त व ताज को इसलिये हुकूमत नहीं दी जाती कि अल्लाह तआला इससे खुश है बल्कि इसलिये अता की जाती है कि ज़मीन की मिल्कियत के अस्ल वारिसों ने अपनी बदकिरदारियों की वजह से विरासत का अधिकार को खो दिया। और अब कायनात के मसलहों के पेश नज़र हुकूमत के लिये न मुस्लिम की शर्त है न काफ़िर व मुश्रिक की। (और अल्लाह जिसको चाहता है अपना मालिक बख़्श देता है)

और अगर मुसलमान इबरत का चश्मा लगांए और अपनी बेजान जिन्दगी में इन्क़लाब बरपा करें सालहीन का विशेषता हासिल करें तो खुदा का वादा भी उन्हें बशारत देने के लिये आगे बढ़ता है: {वादा कर लिया अल्लाह ने उन लोगों से जो तुम में ईमान वाले हैं और किये हैं उन्होने नेक काम अल्बत्ता बाद को हाकिम कर देगा इन को मालिक में, जैसा हाकिम किया था उनके अगलों को और जमा देगा उनके लिये दीन जो पसन्द कर लिया उनके वास्ते और देगा उनको उनके ख़ौफ़ को बदले अमन।

ज़ोहद व क़नाअत की आला मिसाल

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हज़रत अबू उबैदा बिन जर्राह (रज़ि0) मशहूर सहाबी हैं, आपका शुमान अशरा–ए–मुबश्शरा में होता है, नबी–ए–अकरम (स0अ0व0) ने आपको ''अमीनुल उम्मह'' का लक़ब अता फ़रमाया है, हज़रत उबैदा (रज़ि0) को इस्लाम के उन अव्वलीन हलक़ा बगोशों में शुमूलियत का शर्फ़ हासिल है, जिन्होंने सफ़र व हज़र में नबी करीम (स0अ0व0) की सोहबतों से ज़्यादा से ज़्यादा फ़ैज़ हासिल किया है। इसका नतीजा था कि इत्तेबा–ए–सुन्नत का जज़्बा, ख़ुदातरसी, ज़ोहद व तक़वा व तवाज़ोअ व इन्किसार, रहमदिली, ईसार व मुवासात और अमानतदारी व दयानतदारी आपकी हयात मुबारका के रौशन अबवाब हैं।

हज़रत अबूउबैदा (रज़ि0) एक बहादुर और जांनिसार सहाबी थे। इन्होंने अक्सर ग़ज़वात में रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के साथ शिरकत की और इन्तिहाई शौक़ व जज़्बे के साथ मारके सर किये। जंगे बद्र में वालिद की मुहब्बत पर उन्होंने इस्लाम की मुहब्बत को तरजीह दी और ज़रा भी नर्म गोशा अख़्तियार करना गवारा न किया। जंगे उहद में भी आपकी शुजाअत क़ाबिले उस्वा है। जब आप (रज़ि0) ने नबी (स0अ0व0) की जबीने मुबारक से दो तीर अपने दातों के ज़रिये खींचकर बाहर निकाले थे और आप (रज़ि0) के सामने के दो दांत गिर गए थे। हज़रत उबैदा (रज़ि0) को हब्शा और मदीना दोनों हिजरतों की सआदत भी हासिल है। यही वजह है कि दरबारे रिसालत में उन्हें एक मुमताज़ मक़ाम हासिल था। सुलह हुदैबिया के मौक़े पर मुआहिदा में बतौर गवाह जिन सात किबार सहाबा के दस्तख़त लिए गए उनमें एक अहम नाम हज़रत अबू उबैदा का भी था।

नबी करीम (स0अ0व0) की वफ़ात के बाद अहदे सिद्दीक़ी व फ़ारूक़ी में भी हज़रत अबूउबैदा (रज़ि0) ख़ास अहमियत के हामिल थे। और हज़रात शेख़ैन के मोअतमद अलैह मुआविन थे, जिन्होंने इन्तिहाई अमानत व दयानतदारी के साथ अपना फ़र्ज़ निभाया। शाम की फ़ुतूहात में इनकी बेमिसाल और बेलौस ख़िदमात तारीख़े इस्लाम का एक सुनहरा बाब है। मगर इबरत की बात है कि ऐसी ग़ैर मामूली निसबतों और इतनी बुलन्द पाया शख़्सियत होने के बावजूद जाह तलब सियासी की बू उन्हें छूकर नहीं गुज़री थी। बल्कि ख़ाकसारी और तवाज़ो के इन्तिहा यह थी कि सिपेहसालारे आज़म बनने के बावजूद मामूली लिबास और रहन–सहन पर ही क़ानेअ थे। एक दफ़ा एक रूमी क़ासिद उनके यहां हाज़िर हुआ। उसने मुसलमानों के अमीर को दरयाफ़्त किया। लोगों ने हज़रत अबूउबैदा बिन जर्राह (रज़ि0) की तरफ़ इशारा किया तो वह महवे हैरत रह गया कि एक ऐसा शख़्स एक बड़ी सल्तनत का अमीर कैसे हो सकता है, जो मामूली वज़अ–क़तअ में है और अपने साथियों के साथ फ़र्शे ख़ाक पर बैठा तीरों को उलट–पलट कर हथियारों का मुआयना कर रहा है।

हज़रत उमर (रज़ि0) ने हज़रत अबुउबैदा (रज़ि0) को दमिश्क़ का गवर्नर मुक़र्रर किया था। एक मौक़े पर हज़रत उमर (रज़ि0) का मुल्के शाम का दौरा हुआ तो हज़रत अबू उबैदा (रज़ि0) शहर के आख़िरी किनारे अमीरुल मोमिनीन के इस्तक़बाल के लिए तशरीफ़ लाए। हज़रत उमर (रज़ि0) ने उनसे उनके घर चलने की बात कही, जिस पर हज़रत अबू उबैदा (रज़ि0) ने फ़रमाया कि मेरे घर में सिवाए रोने के और कुछ नहीं है लेकिन अमीरुल मोमिनीन के इसरार पर घर लेकर आए, हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि0) ने जब अमीरे शाम के घर की हालते ज़ार देखी तो बेसाख़्ता आंसू निकल गए, उनके घर में सिवाए एक टाट, एक लोटे, एक मश्कीज़ा के और कुछ न था। यह दिल सोज़ मंज़र देखकर हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि0) ने ऐसे अज़ीम कलिमात इरशाद फ़रमाए जो तारीख़े इस्लाम में हमेशा ज़ोहद व क़नाअत के बुलन्द मीनार समझे जाएंगे। उन्होंने फ़रमाया: "दुनिया ने हम सबको बदल डाला सिवाए अबू उबैदा (रज़ि0) के।''

तारीख़े इस्लाम में यह उस अमीरे मुमलकत का हाल रक़्म है जिसके सामने दुनिया की दौलत के ढेर लगे थे, मगर उसने एक–एक रूप्ये को ख़ुदा की अमानत समझकर रिफ़ाहे आम में ख़र्च किया। अस्ल में यही वह जज़्बा व क़नाअत का जौहर था जिसने इन्तिहाई बर्क़ रफ़तारी के साथ पूरे आलम में इस्लाम के झंडे लहरा दिये और इस्लामी सल्तनत किसी दौर में भी इक़्तिसादी एतबार से दीवालिया का शिकार नहीं हुई, इसके बरख़िलाफ़ दुनियावी हुक्मरानों का हाल है जो महज़ अपने दाद व ऐश देने के लिए पूरे मुल्क को कंगाल और ग़ुलाम बना देते हैं।

तहज़ीबे इस्लामी की आलमी तश्कील

मुहम्मद नफ़ीस ख़ाँ नदवी

मज़हब–ए–इस्लाम की यह इम्तियाज़ी ख़ुसूसियत है कि इसके अक़ाएद के ज़ुलू में इसकी तहज़ीब भी परवान चढ़ती है। चुनान्चे रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने जब हमसाया मोमालिक यानि ईरान, रोम, मिस्र, यमन और हब्शा के बादशाहों व सरबराहों के नाम ख़ुतूत रवाना किये और उन्हें इस्लाम की दावत दी तो उन ख़ुतूत के पहलू ब पहलू इस्लामी तहज़ीब ने भी इन मुल्कों में दस्तक दी।

तहज़ीबे इस्लामी के अन्दर ऐसे मुअस्सिर अवामिल थे जो तेज़ रफ़्तारी और जामईयत के साथ उसकी नश्र व इशाअत में मुहर्रिक व मुआविन साबित हुए। यह तेज़ रफ़्तारी पहाड़ो, वादियों, सेहराओं और रेगिस्तानों में यकसां रही। इस्लाम की जामईयत ने कभी गोरे व काले, अरबी व अजमी, देहाती व शहरी की तफ़रीक़ नहीं की, इसके निज़ामे हुक्मरानी में हक़ व ख़ैर के वह तमाम अनासिर जमा थे जिनका इन्सानियत अपने आदाबे ज़िन्दगी और तर्ज़े बूदोबाश के इख़्तिलाफ़ के बावजूद तक़ाज़ा करती है। यही वजह है कि जितनी भी तहज़ीबें इस्लाम के साए में पहुंची वह अपने मुफ़ीद व कारामद अनासिर के साथ ना सिर्फ़ परवान चढ़ती रहीं बल्कि इस्लामी तहज़ीब का हिस्सा बन गईं।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की वफ़ात के बाद अहदे ख़िलाफ़त (632–634 ई0) शुरू हुआ, इब्तिदाई दो साल उन लोगों से जंग में गुज़रे जो इस्लाम की जामईयत, उसकी अब्दियत और एक मरकज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ थे, दाख़िली इन्तिशार व मसाएल के तज़फ़िये के बाद आप (रज़ि0) ने शाम व इराक़ की जानिब लश्कर रवाना किये और इस्लाम का परचम अपनी तमाम ख़ूबियों के साथ सरज़मीने अरब के बाहर भी लहराने लगा।

फ़ुतूहात को जो सिलसिला हज़रत अबूबक्र (रज़ि0) के अहद में शुरू हुआ, आप (रज़ि0) के जानशीनों हज़रत उमर (रज़ि0) और हज़रत उस्मान (रज़ि0) ने उसे इन्तिहाई अजमत तक पहुंचा दिया और निस्फ़ सदी से कमतर अर्से में ही इस्लाम ईरान और अफ़्रीक़ा के ग़ालिब व मक़बूल दीन के तौर पर उभर कर सामने आया।

यह वह दौर था जब इस्लामी तहज़ीब का दीगर तहज़ीबों से तसादुम शुरू हुआ। मुसलमानों के पास ऐसे जवां मर्दों की कमी नहीं थी जो राहे ख़ुदा में अपनी जानों को न्यौछावर कर दें लेकिन मफ़तूहा सरज़मीन का निज़ाम संभालने व सियासी सुतूनों को मज़बूत करने के लिए मतलूबा फ़रासत व ज़कावत, तदब्बुर व तदबीर और अहवालो व अक़वाम से वाक़िफ़ियत की कमी थी, चुनान्चे मरकज़े इस्लाम पर मुख़्तलिफ़ तहज़ीबों का सख़्त हुजूम हुआ, मुसलमान अपनी सादा लौही, फ़ितरी व तबई मिज़ाजे इन्सानी इक़रार के साथ मुआन्दीने इस्लाम की किज़्ब बयानी, इफ़तरा परदारी व दसीसाकारी और दज्ल व फ़रेब को पूरी तरह समझ न सके, और अंजामे कार आलमे इस्लाम दाख़िली इन्तिशार व ख़ाना जंगी का शिकार हो गया और फ़ुतूहात का सिलसिला आरज़ी तौर पर मौक़ूफ़ हो गया।

मरकज़े इस्लाम पर मुख़्तलिफ़ तहज़ीबों का यह हमला इस क़दर सख़्त और मतनूअ था कि जलीलुल क़द्र सहाबा भी इसकी संगीनी व तबाही को पूरी तरह समझ न सके। शायद फ़ैसला ख़ुदावन्दी ने ऐसे ही पेचीदा व योरिशज़दा हालात से निपटने के लिए हज़रते अली मुर्तज़ा (रज़ि0) की जलीलुल क़द्र शख़्सियत को तैयार कर रखा था, चुनान्चे आप (रज़ि0) की ग़ैर मामूली फ़रासत, अज़ीमुल मिसाल जुर्रत और बेनज़ीर सियासी बसीरत ने सभी फ़ित्नो का सिर इस सख़्ती से कुचल दिया कि मरकज़े इस्लाम का सियासी मतला एक बार फिर साफ़ व शफ़फ़ाफ़ नज़र आने लगा। फ़ित्नों के इस मुख़्तसर से दौर में मुसमानों को ख़ासा जानी व माली नुक़सान भी उठाना पड़ा लेकिन तहज़ीबे इस्लामी की आलमी तश्कील में यह फ़ित्ने बहुत कुछ सामाने दर्स भी दे गए। कमज़ोर यहूदियों की निशानदेही हो गयी, दीगर तहज़ीबों की ख़ूबियां और ख़ामियां और उनके रद्द व

कुबूल की शक्लें सामने आ गयीं। अरब व अजम के मेराज का इख़्तिलाफ़ ज़ाहिर हो गया और सबसे बढ़कर फ़ित्नों के हुजूम में इस्लामी लाहया–ए–अमल तय हो गया। और यह सब एक ऐसी अज़ीम की क़यादत की रहनुमाई में हुआ जिससे बढ़कर मुसलमानों के पास कोई शख़्सियत नहीं थी। मुसलमानों ने नए सिरे से अपना मुहासिबा किया, नफ़ा व नुक़सान का जाएज़ा लिया, कमियों को दूर किया, तैयारियां मज़बूत कीं और फिर एक ताज़ादम व ताज़ा क़ौम की तरह नए जोश व ख़रोश के साथ आगे बढ़ना शुरू किया और फ़ुतूहात का सिलसिला एक बार फिर चल पड़ा।

बनू अब्बास के दौरे वस्त में इस्लाम तीन बर्रे आज़मों अफ़्रीका, एशिया और यूरोप तक फैल गया। इस दौरानिया में दीने इस्लाम की जुग़राफ़ियाई सरहदें मश्रिक में मौजूद चीन की सरहद तक, मग़्रिब में मौजूदा मराकिश तक जो उस ज़माने में मग़्रिबी अफ़्रीक़ा की आख़िरी आबादी थी, शुमाल में तमाम मा–वराउन्नहर का इलाक़ा और जुनूबी साइबेरिया एशिया सग़ीर का हिस्सा, बहीरा–ए–रोम का तमाम मश्रिक़ी साहिल और पाइरेनीज़ की पहाड़ियां जो स्पेन और फ़्रांस में हद्दे फ़ासिल हैं और जुनूब में अलजज़ाएर यानि जुनूबी शरक़ी एशिया, जज़ीरा जाफ़ना जो श्रीलंका में है और अफ़्रीका के रेगिस्तान तक फैल गईं थीं।

मशहूर सोशलिस्ट लीटर एम. एन. राय (डण्छण त्वल) लिखता है:

(The first Khalifs of Damascus riegned an empire which could not be crossed in less than five monthson the fleetest camel…The Roman Empire of Augusts, as later enlarged by the valiant Trajan, was the result of great and glorious victories, won over period of seven hundred years. Still, it had not attained the proportions of the Arabian Empire established in less than a century. The Empire of Alexander represented but a fraction of the vast domain of Khalifs. For nearly thousands years , The Persian Empire resisted the arms of Rome, only to be subdued by the "Sword of God" in Less than a decade.)

(दमिश्क़ के ख़ुल्फ़ा एक ऐसी अज़ीमुश्शान सल्तनत के फ़रमारवां थे जिसकी मुसाफ़त को तेज़ रफ़्तार ऊंट पर भी पांच माह से कम में तय नहीं किया जा सकता था, रोम की ज़बरदस्त शंहशाहियत जिसे उसके हीरो ट्राजान ने वसीअ कर लिया था सदियों की ज़बरदस्त फ़ुतूहात के बाद क़ायम हो सकी थी फिर भी वह उस अरबी सल्तनत के बराबर न थी जो एक सदी से कम मुद्दत में क़ायम हो चुकी थी, सिकन्दरे आज़म की सल्तनत अपनी वुसअत और हमागीरी के बावजूद ख़ुल्फ़ा की वसीअ सल्तनत का सिर्फ़ एक हिस्सा थी, ईरानी हुकूमत तक़रीबन एक हज़ार साल तक रोम का मुक़ाबला करती रही लेकिन यह अज़ीमुश्शान सल्तनत "सैफ़ुल्लाह" के हाथों सिर्फ़ चन्द सालों में मग़लूब हो गयी)

यह वसीअ व अरीज़ सरज़मीन बाहम बरसरे पैकार अक़वाम व गोनागों तहज़ीबों की हामिल थीं, इस्लाम की आमद ने उनके माबैन उल्फ़त व यगानगी पैदा की, उनकी तहज़ीबी कशाकश को दूर किया, मुफ़ीद अनासिर को परवान चढ़ाया और फिर इस्लामी तहज़ीब को इस तौर पर फ़रोग़ हासिल हुआ कि वह मुख़्तलिफ़ अफ़कार व नज़रियात, मुतअद्दिद सक़ाफ़तों और मुतफ़र्रिक़ ज़बानों की मरकजुल इत्तेसाल बन गई।

तहज़ीबे इस्लामी के फ़रोग़ में एक बुनियादी अन्सर इस्लाम का दीने फ़ितरत और इन्सानी तबियत का मवाफ़िक़ होना भी है, इसमें न कोई लोच है और न किसी तरह की बेबसी, बल्कि इसके अन्दर इन्सान के मुख़्तलिफ़ अहवाल व कैफ़ियात के तक़ाज़ों को पूरा करने की भरपूर सलाहियत है, इसीलिए इसको कुबूल करना इन्तिहाई सरल व आसान है, चुनान्चे इन्सानी ज़िन्दगी का कोई ऐसा पहलू या फ़ितरते इन्सानी का कोई ऐसा तक़ाज़ा नहीं जिसकी तकमील इस्लाम ने अपनी लाफ़ानी तालीमात के ज़रिये न की हो।

तारीख़ की ताबनाक हक़ीक़त के बाद भी यह एतराफ़ नागुज़ीर है कि उरूज की बुलन्दियों तक पहुंचने के बाद यह आलमगीर तहज़ीब अपनी तमाम ख़ूबियों के होते हुए ज़वाल का शिकार हुई, ज़िन्दगी के हर मैदान में इन्सानियत की मसीहाई के दावे के बावजूद मुल्को और क़ौमों ने न सिर्फ़ इसको नज़रअंदाज़ किया, बल्कि इसकी हक़्क़ानियत व अब्दियत पर भी सवाल खड़े किए और आज तारीख़ की सबसे बड़ी हुकूमत न सिर्फ़ अपने वजूद को सहारने में मसरूफ़ है बल्कि दीगर मुल्की व आलमी तहज़ीबों के साथ कशाकश में भी मुब्तिला है।

असबाबे उरूज व ज़वाल के इदराक की सारी कोशिशें आज भी तिश्ना हैं और शायद यही प्यास मुसलमानों के मौजूदा जवाल की एक वजह हैं।

झूठ की प्रचलित शक्लें

"झूठ बोलना हराम है, ऐसा हराम है कि कोई मिल्लत, कोई क़ौम ऐसी नहीं गुज़री जिसमें झूठ बोलना हराम न हो, यहां तक कि ज़माना जाहिलियत के लोग भी झूठ बोलने को बुरा समझते थे, अफ़सोस कि अब इस झूठ में आम इब्तिला है, यहां तक कि जो लोग हराम व हलाल और जाएज़ व नाजाएज़ और शरीअत पर चलने का एहतिमाम करते हैं, उनमें भी यह बात नज़र आती है कि उन्होंने भी झूठ की बहुत सी क़िस्मों को झूठ से ख़ारिज समझ रखा है और यह समझते हैं कि गोया यह झूठ ही नहीं है, हालांकि झूठा काम कर रहे हैं, ग़लतबयानी कर रहे हैं और इसमें दोहरा जुर्म है, एक झूठ बोलने का जुर्म और दूसरे उस गुनाह को गुनाह न समझने का जुर्म।

आजकल इसका आम रिवाज हो गया है, अच्छे ख़ासे दीनदार और पढ़े–लिखे लोग भी इसमें मुब्तिला हैं कि झूठे सर्टिफ़िकेट हासिल करते हैं, याद रखिए कि यह सर्टिफ़िकेट और यह तस्दीक़नामा शरअन एक गवाही है और जो शख़्स इस सर्टिफ़िकेट पर दस्तख़त कर रहा है, वह हक़ीक़त में गवाही दे रहा है और गवाही देना उस वक़्त जाएज़ है जब आदमी को इस बात का इल्म हो और यक़ीन से जानता हो कि यह वाक़ई में ऐसा है, तब इन्सान गवाही दे सकता है, इसके बग़ैर इन्सान गवाही नहीं दे सकता।

आजकल तो झूठ का ऐसा बाज़ार गर्म हुआ कि कोई शख़्स दूसर जगह झूठ बोले या न बोले, लेकिन अदालत में ज़रूर झूठ बोलेगा, बाज़ लोगों को यहां तक कहते हुए सुना कि "मियां! सच्ची–सच्ची बात कह दो, कोई अदालत में थोड़ी खड़े हो" हालांकि अदालत में जाकर झूठी गवाही देने को हुज़ूर अक़दस (स0अ0व0) ने शिर्क के बराबर क़रार दिया है।

भाई! हमारे समाज में झूठ की बीमारी फैल गई है, इसमें अच्छे–ख़ासे दीनदार, पढ़े–लिखे, नमाज़ी, बुज़ुर्गों से ताल्लुक़ रखने वाले, वज़ाएफ़ और तस्बीह पढ़ने वाले भी मुब्तिला हैं, वह भी इसको नाजाएज़ और बुरा नहीं समझते कि यह कोई गुनाह होगा, हालांकि हदीस शरीफ़ में हुज़ूर अक़दस (स0अ0व0) ने यह जो फ़रमाया कि "अगर बयान करता है तो झूठ बोलता है" इसमें यह बातें भी दाख़िल हैं और यह सब दीन का हिस्सा हैं और उनको दीन से ख़ारिज समझना बदतरीन गुमराही है, इसलिए उनसे इज्तिनाब करना ज़रूरी है।

अलबत्ता बाज़ मौक़े ऐसे होते हैं कि उनमें अल्लाह तआला ने झूठ की भी इजाज़त दे दी है, लेकिन वह मौक़े ऐसे हैं जहां इन्सान अपनी जान बचाने के लिए झूठ बोलने पर मजबूर हो जाए और जान बचाने के लिए उसके पास इसके अलावा कोई रास्ता न हो, इस सूरत में शरीअत ने झूठ बोलने की इजाज़त दी है।

जस्टिस मौलाना मुफ़्ती तक़ी उस्मानी साहब
(इस्लाही ख़ुत्बातः ३/१३९-१४९)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 12 December 2021 Volume: 13

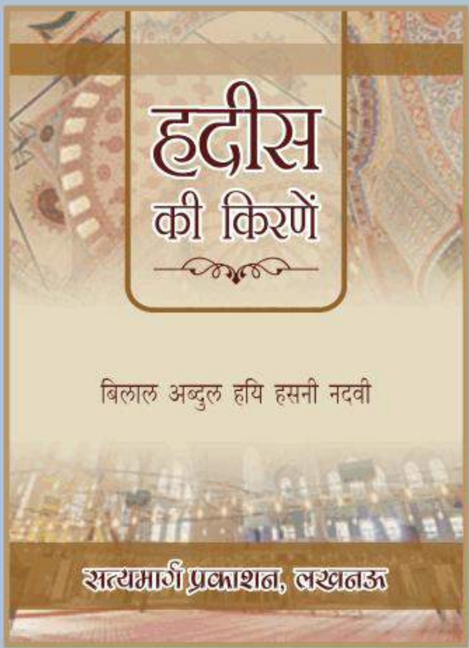

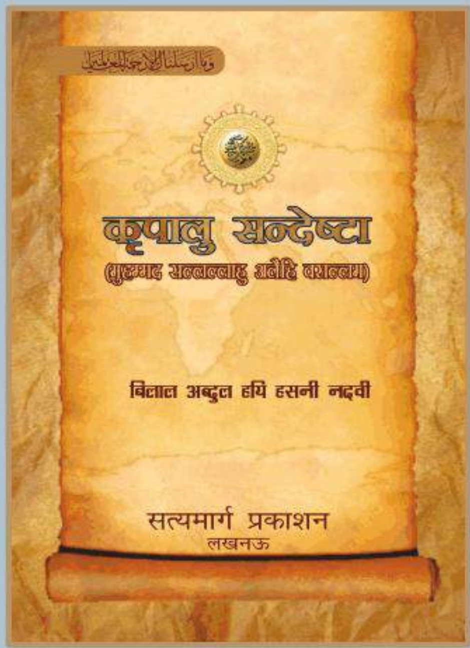

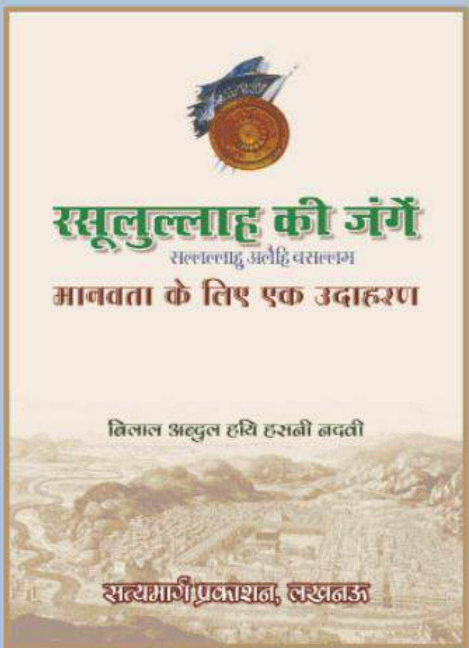

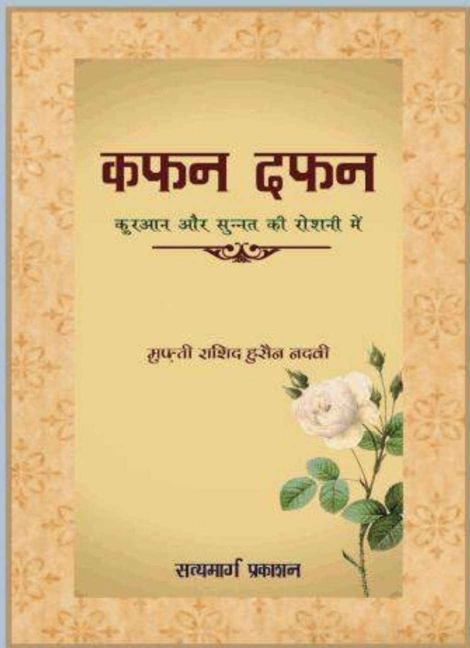

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.